वर्तमान शिक्षा

मुद्रक तथा प्रकाशक
मोतीलाल जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

संवत् १९९३ से २०१८ तक ५८,२५०
संवत् २०२१ दसवाँ संस्करण १०,०००
कुल ६८,२५०

मूल्य १० न० पै० (दस नये पैसे)

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

श्रीहरिः

वर्तमान शिक्षा

वर्तमान शिक्षित नवयुवकोंके आचरणों और कार्योंको देखकर दुखी हुए कितने ही सज्जनोंने मुझसे इस विषयपर कुछ लिखनेके लिये अनुरोध किया है; इनमें कई सज्जन तो स्वयं भुक्तभोगी हैं, लड़के-लड़कियोंके पढ़नेमें गाढ़ी कमाईका पैसा खर्च करके आज वे उनको दूसरे ही ढाँचेमें ढले देखकर दुखी हो रहे हैं। अपने शिक्षित पुत्र-कन्याओंका जीवन विलासी, खर्चीला, अकर्मण्य और धर्मशून्य देखकर वे बेचारे मर्माहत होकर कई बातें पूछते हैं। उनके समाधानके लिये यथासाध्य कुछ बातें उन्हें लिख दी जाती हैं; परन्तु यह रोग तो अब इतना व्यापक हो गया है कि जो छूटना असम्भव-सा जान पड़ता है। गुण-दोष सभी कार्योंमें होते हैं। इस न्यायसे इस शिक्षामें भी कुछ गुण अवश्य हैं और उनसे लाभ भी पहुँचा है, परन्तु ध्यान देकर तौलनेपर

लाभकी अपेक्षा हानिका ही पलड़ा अधिक नीचा दिखायी देता है। पहले तो मोहवश सोचा नहीं, परिणामपर ध्यान दिया नहीं; अब, जब कि चारों ओर इस शिक्षाके साँचेमें ढले हुए लोगोंकी संख्या बढ़ गयी, और उनकी चेष्टासे जब कि चारों ओर शिक्षाकी प्रगतिके नामपर इसका विस्तार करनेवाले स्कूल-कालेज बढ़ गये, दृष्टिकोण बदल जानेसे लाखों नर-नारी इस शिक्षाको परम लाभकारी समझकर सम्मानकी दृष्टिसे देखने लगे, तब ध्यान देनेसे कुछ विशेष लाभकी आशा नहीं रही ! अब तो इस रोगकी जड़ बहुत दूर-दूरतक फैल गयी है, और जबतक इसके विषमय कुफलोंसे भलीभाँति हमारा समाज जर्जरित होकर निरुपाय हो भगवान्की शरण नहीं हो जायगा, तबतक इससे मुक्त होना बहुत ही कठिन है। विश्वविद्यालयोंके दीक्षान्त भाषणोंमें इस शिक्षापद्धतिके कुफल-पर प्रायः बहुत कुछ कहा जाता है। इस पद्धतिको सत्यसे दूर, बेकारी पैदा करनेवाली, धर्महीन और विलासिताको बढ़ानेवाली बतलाया जाता है परन्तु फल कुछ नहीं होता। कारण प्रत्यक्ष है, परिणाम देखकर उन लोगोंको कहना तो पड़ता है लेकिन दृष्टिकोण वही बना रहनेके कारण पुनः-पुनः विचार करनेपर भी उन्हें इसीमें लाभ दीखता है और अनेक कारणोंसे इसकी आवश्यकता भी प्रतीत होती है, अतएव कोई क्रियात्मक सुधार नहीं होता। दिनोंदिन शिक्षालयोंकी, शिक्षितोंकी और शिक्षार्थियों-की संख्या बढ़ती जाती है और उसीके साथ-साथ समाजशरीरमें रोगके परमाणुओंका प्रवेश भी होता जाता है, परंतु उपाय कुछ भी नहीं सूझता। ऐसी हालतमें केवल शिक्षाके दोषोंपर ही आलोचना करनेसे कोई विशेष लाभ नहीं दिखायी देता। जो लोग दृष्टिकोणके भेदसे इस शिक्षासे परम लाभ समझते हैं, उनपर भी दोष नहीं दिया जा सकता,

क्योंकि वे ऐसा ही देखते हैं । न किसीको उलाहना देने या किसीका तिरस्कार करनेसे ही कोई सुफल होनेकी सम्भावना दीखती है । इतने-पर भी जो कुछ लिखा जाता है, सो केवल मित्रोंकी आग्रहपूर्ण आज्ञा पालन करनेके लिये ही अपने मतमें जो-जो कुछ ठीक जँचता है, लिखा जाता है । किसी व्यक्तिविशेषपर कोई आक्षेप करनेकी नीयतसे नहीं । भाषामें कहीं कटुता आ जाय तो उसके लिये पहलेहीसे मैं क्षमाप्रार्थी हूँ ।

शिक्षाका यथार्थ उद्देश्य

आर्यसभ्यताके अनुसार शिक्षाका उद्देश्य है उसके द्वारा इहलोकमें सर्वाङ्गीण (शारीरिक, मानसिक, साम्पत्तिक और नैतिक) अभ्युदय और परलोकमें परम निःश्रेयस—मोक्षकी प्राप्ति । ऋषियोंकी दृष्टिमें विद्या वही है जो हमें अज्ञानके बन्धनसे विमुक्त कर दे । 'सा विद्या या विमुक्तये ।' भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें 'अध्यात्मविद्या विद्यानाम्' कह-कर इसी सिद्धान्तका समर्थन किया है । इसी उद्देश्यसे आर्यजातिके पवित्रहृदय और समदर्शी त्रिकालज्ञ ऋषियोंने चार आश्रमोंकी (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासकी) सुन्दर व्यवस्था की थी । ब्रह्मचर्य-के कठोर नियमोंको पालन करता हुआ ब्रह्मचारी विद्यार्थी संयमकी व्यावहारिक शिक्षाके साथ-ही-साथ लौकिक और पारलौकिक कल्याण-कारी विद्याओंको पढ़कर, सब प्रकारसे शरीर, मन और वाणीसे स्वस्थ एवं संयमी होकर गुरुकुलसे निकलता था; और तब वह गृहस्थमें प्रवेशकर क्रमशः जीवनको और भी संयममय, सेवामय और त्यागमय बनाता हुआ अन्तमें सर्वत्याग करके परमात्माके स्वरूपमें निमग्न हो जाता था । यही आर्यसंस्कृतिका स्वरूप था । जबतक देशमें यह आश्रम-

सम्मत शिक्षापद्धति प्रचलित थी, तबतक आर्यसंस्कृति सुरक्षित थी और सभी श्रेणीके लोग प्रायः सुखी थे। जबसे अनेक प्रकारकी विपरीत परिस्थितियोंमें पड़कर मोहवश हमने अपनी इस आश्रमसम्मत शिक्षापद्धतिको ठुकराया, तभीसे हमारी आदर्श आर्यसंस्कृतिमें विकार आने लगे। आज बीसवीं शताब्दीमें तो हमारी उस संस्कृति-की सुदृढ नौका हमारे ही हाथों नष्ट-भ्रष्ट होकर डूबने जा रही है! ऐसा मतिभ्रम हुआ है कि विनाशके गहरे गर्तमें गिरना ही आज हमारे मन उन्नतिका निदर्शन हो गया है। जिस चोटी और जनेऊको मुसलमानोंकी तलवार नहीं काट सकी, उसीको आज हम शिक्षाभिमानी हिंदू स्वयं ही उन्नतिके नामपर कटवा रहे हैं। अग्निकुण्डकी लाल-लाल लपटोंमें पड़कर भी हिंदूनारीसे जिस सतीत्वको जरा-सी आँच नहीं लगी, वरं उससे वह और भी चमक उठा, वही सतीधर्म आज शिक्षाके फलस्वरूप हमारी वहिन-वेटियोंके लिये भाररूप हो चला है और उसको उतार फेंकनेके लिये चारों ओर सुसंगठितरूपसे कमर कसी जा रही है। जिस धर्म और ईश्वरको हमने अपने समाजशरीरका मेरुदण्ड समझ रक्खा था, आज उसी धर्मकी आवश्यकता और ईश्वरके अस्तित्वको अपने शिक्षितसमुदायके सामने स्वीकार करनेमें हमारे शिक्षित युवकों-को संकोच और लज्जाका अनुभव होता है। मानो वे किसी मूर्खतापूर्ण कुसंस्कारका समर्थनकर अपनी विद्वत्तामें बट्टा लगा रहे हैं अथवा कोई गुरुतर अपराध कर रहे हैं। कामोपभोग ही आज हमारे जीवनका चरम लक्ष्य बन गया है। कामपरायण होकर आज हम अदूरदर्शी शिक्षाभिमानी लोग आपात इन्द्रियसुखको ही परम सुख समझकर अग्निशिखामें पड़कर भस्म हो जानेवाले मूढ़ पतंगोंकी भाँति कामाग्निमें

भस्म होनेके लिये अन्धे होकर उड़ने लगे हैं। इसमें युगप्रभाव तो प्रधान कारण है ही। परन्तु उसकी सिद्धिमें एक बड़ा निमित्त है हमारी यह वर्तमान धर्महीन शिक्षापद्धति। इस शिक्षाके पीछे एक जबरदस्त 'संस्कृति' की प्रेरणा है, जिसने हमारी आँखोंको चौंधिया दिया है और इसीसे हम आज मायामरीचिकामें फँसकर उसे अपनानेके लिये बेतहाशा दौड़ लगा रहे हैं और इसीसे आज हम अपने सरलहृदय बालक-बालिकाओंके हृदयमें कामोपभोगमयी उस 'सभ्यता' का भीषण विष प्रवेश कराकर उन्हें ध्वंसके मुखमें ढकेल रहे हैं और इसीमें उनका और अपना कल्याण मान रहे हैं। जिन देशोंकी यह 'सभ्यता' है, वे तो आज तंग आकर इससे मुक्त होनेकी राह ढूँढ़ने लगे हैं और हम भाग्यहीन उसीको अपनानेके लिये आँख मूँदे दौड़ रहे हैं!! भगवान् हमारी बुद्धिका यह विभ्रम कब दूर करेंगे?

वर्तमान शिक्षासे उत्पन्न दोष

आजकलके कालेजोंमें पढ़नेवाले अधिकांश विद्यार्थियोंमें न्यूनाधिक रूपसे—क्रियारूपमें अथवा विचाररूपमें आपको निम्नलिखित दोष प्रायः मिलेंगे, जो विद्यार्थी—ब्रह्मचारी—जीवनसे सर्वथा प्रतिकूल हैं।

१–ईश्वर और धर्ममें अविश्वास।

२–संयमका अभाव।

३–ब्रह्मचर्यका अभाव।

४–माता-पिता आदि गुरुजनोंमें अश्रद्धा।

५–प्राचीनताके प्रति विद्वेष।

६–विलासिता और फिजूलखर्ची।

७–खेती, दूकानदारी और घरेलू कलाकौशलके कार्योंके करनेमें लज्जा । और

८–सरलताका अभाव ।

इनको कुछ विस्तारसे देखिये ।

१–'ईश्वर मनुष्यकी कल्पना है ।' 'ईश्वरकी चर्चा करना समय नष्ट करना है ।' 'ईश्वरको किसने देखा है ?' 'धर्म ढोंग है ।' 'स्वार्थी मनुष्योंने भोले लोगोंको ठगनेके लिये ईश्वर और धर्मका वहम रचकर लोगोंको डरा रक्खा है ।' 'धर्म एक कुसंस्कार है ।' आदि बातें आजका शिक्षित मनुष्य बड़े गर्वसे कहता है । इन विचारोंको माननेवाला होनेपर भी जो कुछ साधुहृदयका होता है और दूसरोंकी मान्यताको ठुकराकर उनके हृदयको ठेस नहीं पहुँचाना चाहता, वह बड़ी बुद्धिमानीके साथ मानो मूर्खोंको समझाता हुआ-सा कहता है—'होगा ईश्वर, हम उसका विरोध नहीं करते । परन्तु वह किसीको दीखता थोड़े ही है । परन्तु सारा जगत् जब ईश्वरसे पूर्ण है, तब जगत्की सेवा ही ईश्वरकी सेवा है, अतएव भजन-पूजनमें व्यर्थ समय न बिताकर जनताकी सेवा करनी चाहिये । गीतामें भी तो सर्वभूतस्थित भगवान्को अपने कर्मोंसे पूजनेकी बात कही गयी है ।' यों समझानेवाला स्वयं तो भगवान्को नहीं मानता, परन्तु अपनी बुद्धिमानीका प्रयोग करके ईश्वरका प्रत्यक्ष खण्डन न कर परोक्षरूपसे भजन-पूजनरूपी कार्योंको व्यर्थ सिद्धकर मानो ईश्वरसम्बन्धी कुसंस्कारोंसे हमें मुक्त करनेके लिये इस युक्तिवादसे काम लेता है । वह इस बातको नहीं समझता कि सच्ची भगवदनुभूतिके बिना—जीवमें शिवके दर्शन किये बिना यथार्थ सेवा कभी बन ही नहीं सकती । जो सेवा अहंकारकी जननी है, वह तो सेवा ही नहीं है । और शिव-

ज्ञानशून्य सेवासे तो अहंकार ही उत्पन्न होगा। शिवहीन यज्ञका परिणाम तो सर्वध्वंस ही होगा। इस प्रकार ईश्वर और धर्मकी अवहेलनासे धीरे-धीरे उच्छृङ्खलता और यथेच्छाचारकी वृद्धि हो रही है; परंतु इसीको उन्नति समझा जाता है।

२—संयम तो किसी बातमें भी नहीं दिखायी देता। बोल-चाल, हँसी-मजाक, रहन-सहन, वेष-भूषा, खान-पान, सोना-उठना, आचार-विचार—सभीमें मनमानी होती है। शिष्टाचारका आदर नहीं। जबान-पर लगाम नहीं। कुछ वर्षों पहले एक बार मैं पटनेसे स्टीमरमें आ रहा था। उसी स्टीमरमें कालेजके विद्यार्थियोंका एक दल सवार हुआ, कुछ नववयस्क अध्यापक भी साथ थे। वहाँ उनका जो हँसी-मजाक शुरू हुआ, वह सभ्यताकी सीमाको पार कर गया। पास ही कुछ भद्रमहिलाएँ बैठी थीं। वे लज्जासे सिकुड़ने लगीं, परंतु बाबुओंका इस ओर कोई ध्यान ही नहीं था। मालूम होता था मानो उनके मन स्टीमरमें दूसरा कोई है ही नहीं। गंदी भाषा, गंदे इशारे, सामूहिक विकट हास्य, चिल्लाना और कुत्ते-बिल्लीकी बोली बोलना कुछ भी बाकी न रहा। एक बूढ़े मौलवी साहेबने तंग आकर जब उनको कुछ समझानेकी चेष्टा की तो उन बेचारेकी शामत आ गयी। दल-का-दल उनकी दाढ़ी, चश्मे और अचकनकी दिल्लगी उड़ाने लगा। ज्यों ही मौलवी साहेब कुछ बोलते त्यों ही हँसीका भयानक बवंडर उठता। आखिर बेचारे मौलवी साहेबको वहाँसे उठकर दूसरी ओर चले जाना पड़ा।

खान-पानमें तो कोई विचार ही नहीं, कैसी ही चीज हो, किसी-की जूठन हो, जिस रकाबीमें खाँ साहेबके लिये अभी गोमांस आया

उसीमें दूसरे ही क्षण बाबूसाहेबके लिये पकौड़ियाँ आ गयीं। सोडावाटरकी बोतल तो मानो एक माँके कई बच्चोंके लिये माँका स्तन-सी ही बन गयी है। किसीकी जूठन खानेमें कोई झिझक नहीं। एक दिन मैंने एक रेलवे स्टेशनपर देखा, कुछ विद्यार्थी नवयुवक चप्पल पहने, चश्मा चढ़ाये, पंजाबी कुरतेपर जाकेट पहने, ठहाका मारते और उछलते हुए आये और एक जनाना डब्बेके सामने एक खोनचेवालेके पास खड़े होकर तरह-तरहकी गंदी बातें करने लगे, मानो उनके घर माँ-बहिन हैं ही नहीं; फिर उनमेंसे एकने खोनचेवालेसे दही-बड़े खरीदे, दूसरेने पकौड़ियाँ लीं और फिर लूटखसोट शुरू हुई। एकका जूठा दूसरेके मुँहमें ठूँसा जाने लगा। हँसीके मारे सब पसीने-पसीने हो रहे थे। इतनेमें चाय-बिस्कुट और न मालूम क्या-क्या मुसलमान खोनचेवालोंसे खरीदा गया। भक्ष्याभक्ष्यका और आचारशुद्धिका कुछ विचार ही नहीं। इस तरहकी घटनाएँ प्रायः रोज ही होती हैं।

घरमें गरीबी है, पिता बड़ी मुश्किलसे खर्च भेज पाते हैं; परंतु बात-बातमें बाबूगिरी चाहिये और चीजोंकी बात तो दूर रही, जूतेकी भी तीन-तीन जोड़ियोंके बिना काम नहीं चलता। बाहर जानेके लिये अलग, टेनिसके लिये अलग और कमरेके लिये चट्टी अलग! कहीं भी किसी भी बातमें आत्मसंयमकी गुंजाइश नहीं। कहाँ तो गुरुकुलवासी विद्यार्थियोंके छात्रजीवनको संयमित रखनेके लिये मनु महाराज इन नियमोंका विधान करते हैं—'ब्रह्मचारी प्रतिदिन नहाकर शुद्धभावसे देवर्षिपितृतर्पण करे, देवताओंकी पूजा करे, सुबह-शाम हवन करे, मद्य-मांसका सेवन न करे, इत्र-फुलेल न लगावे,

हार-माला आदि न पहने, रस न खाय, स्त्रीके पास न जाय, उत्तेजक वस्तु न खाय, प्राणिहिंसा न करे, तेल न लगावे, आँखोंमें सुरमा न डाले, जूते न पहने, काम, क्रोध, लोभके वश न हो, अकेला सोवे। नाचना, गाना, बजाना, जूआ आदि खेलना, कलह करना, दूसरोंकी बातें जानना, असत्य बोलना, दूसरोंका अहित करना, स्त्रियोंकी ओर देखना, उनका आलिङ्गन करना आदि बातोंसे बचा रहे।' और कहाँ आज उनमें इन नियमोंके सर्वथा विपरीत सूर्योदयके बाद उठना, चाय पीकर पीछे स्नान करना, देवर्षि-पितरोंका मजाक उड़ाना, अभक्ष्य खाना, सेंट लगाना, सिनेमा देखना, गंदे उपन्यास पढ़ना आदि संयमका नाश करनेवाली बातें बढ़ी हुई हैं।

३-बड़े ही खेदकी बात है कि इस विषयमें तो आज हम सबसे बढ़कर पतित हो चले हैं। पाठ्यपुस्तकोंमें खुला शृङ्गार, गंदे नाटक-उपन्यासोंका पढ़ना, यौनसाहित्यका प्रचार, विलासितापूर्ण रहन-सहन, अनुभवहीन असंयमी युवक-अध्यापकोंका सङ्ग, सहशिक्षाका प्रचार, भोगोंकी क्रीडाभूमि, पाश्चात्यपद्धतिके विद्यालय और होस्टल एवं परस्पर गंदे पत्रव्यवहारकी कुचाल, मनमें खामखाह विकार पैदा करनेवाले चटकीले चित्रपट आदि वस्तुएँ हमारे विद्यार्थियोंके उच्छृङ्खल जीवनको दिनोंदिन और भी उच्छृङ्खल बना रही हैं। मुझे एक बहुत विश्वस्त सज्जनने बतलाया था कि शिक्षाक्षेत्रमें सबसे बढ़कर अग्रसर प्रान्तकी युनिवर्सिटीके विद्यार्थियोंमें लगभग आधेसे अधिक जननेन्द्रियसम्बन्धी रोगोंसे ग्रस्त हैं! जातीय जीवनके आधार नवयुवकोंकी यह दुर्दशा निस्सन्देह खूनके आँसू बहानेवाली है।

४—माता-पिता आदि गुरुजनोंको मूर्ख समझना, उनके कार्योंमें दोष देखना, कर्तव्यवश या अच्छा कहलानेके लिये शरीरसे उनकी कुछ सेवा करते हुए भी उनकी बुद्धिका अनादर करना आजकलके पढ़े-लिखे लोगोंका स्वभाव-सा बन गया है। घरमें जहाँ नित्य बड़े-बूढ़ोंके चरणोंमें प्रणाम करनेकी आर्यप्रथा थी, वहाँ आज उनकी संतान कहलानेमें भी किसी-किसीको लज्जाका अनुभव होता है। एक पढ़े-लिखे भाईने एक बार मुझसे कहा था कि 'इन मूर्खोंका बेटा-पोता न होकर स्वतन्त्र विचारवाले देशोंमें मेरा जन्म हुआ होता तो आज मैं कितना सौभाग्यशाली होता।' यद्यपि ऐसे विचार बहुत ही थोड़े ही युवकोंके होंगे। परन्तु माता-पिता आदिके विचारोंमें तो श्रद्धा बहुत ही कम रह गयी है। बल्कि उनकी अवज्ञा करनेमें ही कहीं-कहीं उन्नति मानी और बतलायी जाती है। जो माता-पिता जन्म देते हैं, पालते-पोसते हैं, कष्ट उठाकर पढ़ाते हैं, उन्हींको जब पुत्र मूर्ख मानता है और उनके विचारों एवं वचनों-का अनादरकर उन्हें संताप पहुँचाता है, तब उन माता-पिताके हृदयों-में कैसी मर्मभेदी व्यथा होती है, इसका अनुमान उन पुत्रोंको कभी नहीं हो सकता। मेरे सामने एक बार एक पिताने जब रो-रोकर अपना दुःख सुनाया था तब मेरी आँखोंमें भी आँसू आ गये थे।

५—एक बार एक मेरे नवयुवक मित्रने कहा था कि हम तो पुराने मात्रका ध्वंस करके सब कुछ नवीन निर्माण करना चाहते हैं। वेद-पुरान, कुरान-बाइबल किसीको भी हम नहीं मानते। ऐसी मनोभावना प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे नवयुवकोंके हृदयोंमें उत्पन्न होने लगी है। इसीसे वे सुधारके नामपर संहार करना चाहते हैं। प्राचीनताके प्रति ऐसा

अविवेकमूलक विद्वेष और नवीनताका यह प्रबल आक्रमणका ही फल है ।

६—कालेजके पढ़नेवाले विद्यार्थीका औसतन मासिक खर्च आजकल लगभग ५०) माना जाता है । बम्बई-सरीखी जगहोंमें इससे कहीं अधिककी आवश्यकता होती है । कालेज और उनके छात्रावासोंका निर्माण ही इस ढंगसे हुआ है—उनकी पद्धति और आदर्श ही इतना खर्चीला है कि जहाँ इससे कम खर्चमें रहना विद्यार्थी अपनी बेइज्जती समझता है । इनमें फैसन तो इतना बढ़ जाता है कि जितना खर्च उनके फैसनमें होता है, उतनेमें दो-तीन गरीब गृहस्थोंका गुजर हो सकता है । तरह-तरहके जूते, जूते रँगनेकी स्याही, विलायती दन्तमञ्जन, आइना, घी, ब्रश, रिष्टवाच, —क्रिकेटके लिये फलालैनका सूट, टेनिसके लिये पतलून और ब्लेजर, होटलोंका जलपान, सैलूनोंकी हजामत, कम्पनियोंकी कपड़ाधुलाई, नये-नये नावेल, दोस्तोंको दावत, प्रेमियोंको प्रेमोपहार, सिनेमा, मैच आदि-आदि न मालूम कितनी फैसनकी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेमें उन्हे आँख मूँदकर धन खर्च करना पड़ता है । विद्यार्थियोंके गरीब माता-पिता गहने बेचकर, घर-द्वार, बंधक रखकर, भीख माँगकर बड़ी आशासे बच्चोंको पढ़ानेके लिये खर्चका यह भारी बोझ उठाते हैं । परंतु वहाँ एक-दूसरेकी देखादेखी कालेजके विद्यार्थीको इस बातकी चिन्ता ही नहीं होती कि घरमें माता-पिताकी क्या हालत है । कभी छुट्टियोंमें घर आना होता है तो विवाहित युवक बीबियोंके लिये तरह-तरहके शौकके सामान लाना चाहते हैं, उसके लिये माता-पिताको अलग तंग होना पड़ता है । पुत्र नाराज न हो, उसके मनमें दुःख होगा

तो वह फेल हो जायगा, इस डरसे माता-पिता जहरकी घूँट पी जाते हैं, परंतु घर आये हुए पुत्रके सामने अपना दुःख कभी प्रकट नहीं करते। घर आकर कालेजके विद्यार्थी घर-गृहस्थीकी तो बात ही क्यों पूछने लगे ! क्यों वे घरके मोटे-सोटे काममें मन लगाकर माता-पिताको सहायता देने लगे ? मित्रोंसे मिलना-जुलना, हँसी-मजाक, प्रेमपत्र, ताश-शतरंज, कलेवा-जलपान आदिमें ही उनका समय बीत जाता है। माता-पिता इसी आशापर यह सब सह लेते हैं कि बेटा पास होकर हमें कमाकर देगा। गाँवके उन गरीब माता-पिताको क्या पता कि अभी जिस बेटेको पढ़ानेकी नीयतसे उसकी उचित-अनुचित माँगका कुछ भी विचार न करते हुए ही हृदयका खून दे-देकर खर्च जुटाकर भेजते हो, वही जब पढ़कर—पास होकर आवेगा, तब तुमलोगोंको मूर्ख समझेगा और यदि कहीं नौकरी न लगी तो परिवारभरको और भी मुश्किलमें पड़ना होगा।

गरीबका गुजर ऐसी अर्थनाशक शिक्षासे कैसे होगा, भगवान् ही जानें।

७—मैंने देखा है परीक्षोत्तीर्ण लड़के घरकी खेतीका काम नहीं कर सकते, वे दूकानदारी नहीं कर सकते। सुनार, कुम्हार या चमारका पढ़ा-लिखा लड़का, अपने घरकी कारीगरीका काम करनेमें अपनी तौहीनी समझता है। आफिसकी नौकरीके सिवा वे सभी कामोंमें प्रायः असमर्थ हो जाते हैं। झूठे आत्माभिमानके वश होकर अपना काम अपने हाथों करनेमें उन्हें शरम मालूम होती है। बाजारसे दो-चार सेर चीज खरीदकर लानेमें उन्हें कुलीकी जरूरत होती है। बोझ लाना उन्हें अपनी शान

के खिलाफ जँचता है। घरमें झाड़ू देना, कपड़े धोना आदि कार्य करनेमें तो लाज मानो मूर्तिमान् होकर खड़ी हो जाती है। घरका काम तो अलग रहा, कई लोगोंको तो असभ्य-से लगनेवाले माता-पिता और बहिन-भाइयोंके साथ रहनातक बुरा माॡम होता है। सच पूछिये तो इसी कारण आजकल बेकारी भी ज्यादा बढ़ रही है। सभीको नौकरी चाहिये। झूठी इज्जतके मोहमें खर्च बढ़ा ही रहना है। परिणाममें आत्महत्याकी नौबत आती है। किसी कारीगर या मजदूरने आत्महत्या की हो ऐसी बात शायद नहीं सुननेमें आती। आत्महत्या बेकार बाबू ही करते हैं जो नौकरी और वकोली आदिके सिवा अन्य काम नहीं कर सकते। उनको हेय दृष्टिसे देखते हैं। इस मनोभावनाको लिये हर साल विश्वविद्यालयोंसे हजारों विद्यार्थियोंका पास होकर निकलते रहना, भविष्यमें बेकारीका कैसा भयंकर रूप सामने लावेगा और उसका परिणाम कितना भयंकर होगा यह कौन कह सकता है?

८—हमारे बड़े-बूढ़ोंमें जितना निष्कपट भाव है, हमलोगोंमें उतनी ही कपट-चातुरी आ गयी है। पुराने लोग शत्रुको शत्रु कहेंगे और मित्रको मित्र, परंतु आज ऊपरसे मित्र कहते रहकर भी भीतरसे हम शत्रुताका बर्ताव करेंगे। कपटपूर्ण मैत्री, मधुर वचनोंके पीछे छिपी हुई कठोरता आजकी सभ्यताका एक अङ्ग-सी बन गयी है। सरलताका नाम आज मूर्खता है और मक्कारीका बुद्धिमत्ता।

स्त्री-शिक्षा

पुरुषोंकी भाँति ही स्त्री-शिक्षाका भी काफी प्रचार बढ़ रहा है। पुरुषोंमें शिक्षा बढ़नेके साथ-ही-साथ हमें स्त्री-शिक्षाकी भी आवश्यकता

प्रतीत हुई। स्त्रियोंके लिये विद्यालय, स्कूल और कालेजोंकी स्थापना हुई, स्त्री-शिक्षाका भी वही आदर्श माना गया जो पुरुषोंके लिये था, क्योंकि दृष्टिकोण ही ऐसा था। उच्च शिक्षा होनी चाहिये, और उच्च शिक्षाका अर्थ ही है कालेजोंकी शिक्षा, बी० ए०, एम० ए० की डिग्री प्राप्त करना, वकालत या डाक्टरी पास करना! स्त्रियाँ भी इसी पथपर चलीं और चल ही रही हैं। वे भी पढ़-लिखकर अध्यापक, मास्टर, क्लर्क, वकील, बैरिस्टर, लेखिका, नेता, म्युनिसिपलिटी या कौंसिलोंकी मेम्बर बन रही हैं। यही उन्नतिका स्वरूप है। चारों ओर इस उन्नतिके लिये उल्लास प्रकट किया जा रहा है और यह उन्नति पूर्णरूपसे हो जाय इसके लिये अथक चेष्टा हो रही है। ऐसी स्त्री-शिक्षा देनेवाले स्कूल-कालेजोंकी और विद्यार्थिनियोंकी संख्या दिनोंदिन बढ़ रही है। शिक्षाके साथ-साथ शिक्षाके अवश्यम्भावी फलरूप उपर्युक्त दोष स्त्रियोंमें भी आ रहे हैं। वे भी ईश्वर और धर्मका विरोध करने लगी हैं। सरलता, कोमलता श्रद्धा, संकोच, प्राचीनतासे प्रेम आदि स्वाभाविक गुणोंके कारण यद्यपि पुरुषोंकी तरह ईश्वर और धर्मका खुला और आत्यन्तिक विरोध करने-वाली स्त्रियाँ अभी नहीं पैदा हुई हैं, परंतु सूत्रपात हो चला है। संयमका अभाव भी बढ़ रहा है। पुरुषोंकी अपेक्षा स्वभावसे ही स्त्री कई बातोंमें अधिक संयमी होती है, इससे उसकी इधर प्रगति यद्यपि रुक-रुककर होती है, परंतु उसका देखा-देखी करनेका स्वभावदोष उसे असंयमकी ओर खींचे लिये जाता है, इसीसे आज शिक्षित स्त्रियोंमें असंयमकी मात्रा बढ़ रही है। जिस बातको मनमें लानेमें भी स्वभावसे

ही शुद्ध और लज्जाशील स्त्रीका हृदय काँप उठता था । आज वही बात पुकार-पुकार कहनेमें उसे लज्जा नहीं आती । परपुरुषोंसे पत्रव्यवहार करने, उनके साथ हँसी-मजाक करने, परपुरुषोंके साथ ताश-शतरंज खेलने और नाचने आदिमें भी संकोच उठता जा रहा है । ब्रह्मचर्यका अभाव तो भीषणरूपसे हो रहा है । कुछ दिनों पूर्व लाहौरके एक सुधारक पत्रमें लड़के-लड़कियोंकी सहशिक्षाके विरोधमें एक जिम्मेदार सज्जनका लिखा हुआ एक लेख निकला था जिसमें लिखा था कि............ की लेडी हेल्थ आफिसरकी घोषणाका स्वाध्याय किया जाय जो उन्होंने ....के विद्यालयोंमें पढ़नेवाली विद्यार्थिनियोंके स्वास्थ्यकी देख-भाल करके की है, कि बारह वर्षसे ऊपरकी आयुवाली क्वाँरी लड़कियोंमेंसे ९० प्रतिशतके लगभग आसन्नवती (गर्भवती) और गर्भपात करनेवाली पायी जाती हैं । यदि निष्पक्षतासे देखा जाय तो सब ओर यही आग लगी हुई है, परन्तु माता-पिता और देशके नेता क्या सोच रहे हैं यह हमारी समझसे बाहर है !'

९० प्रतिशत तो बहुत दूरकी बात है, १० प्रतिशत भी हो तो बहुत ही भयानक है । विश्वास नहीं होता कि यह संख्या सत्य है । सम्भव है छपनेमें भूल हुई हो परंतु इतना तो अवश्य ही मानना पड़ेगा कि आजकल स्कूलोंमें पढ़नेवाली क्वाँरी कन्याओंके चरित्रोंके बिगड़नेकी सम्भावना बहुत अधिक है, और इसीलिये ऐसी घटनाओंकी संख्या दिनोंदिन बढ़ रही है । जब लड़कियोंका यह हाल है, तब स्वेच्छाचारको ही आदर्श माननेवाली शिक्षिता वयस्का स्त्रीका क्या हाल हो सकता है, यह सोचते ही हृदय काँप उठता है ।

आजकी पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ माता-पिताको नहीं मानतीं। समाचार-पत्रोंमें छपा है कि नागपुरके एस० आर० गोखले नामक एक वृद्ध सज्जनने स्त्रीसहित इसलिये महान् दुखी होकर अपने प्राण दे दिये हैं कि उनकी शिक्षिता युवती कन्या माता-पिताकी आज्ञाके प्रतिकूल अपना मनमाना विवाह करना चाहती थी। आजके युवक-युवती कह सकते हैं कि 'विवाह लड़कीका था। माँ-बापका तो था ही नहीं। लड़की स्वतन्त्रतासे मनमाना पति वरण करती। माँ-बापको बीचमें बोलनेकी क्या आवश्यकता थी।' ठीक है यही तो अहिन्दू आदर्श है। इसी आदर्शके कारण आज अदूरदर्शी नवयुवक और नवयुवतियोंके द्वारा इन्द्रियोंके आकर्षणसे उत्पन्न बुद्धिशून्य और मर्यादारहित प्रेमस्वातन्त्र्य (free love) को महत्त्व दिया जा रहा है, और उसमें जरा-सी बाधा आते ही वे आत्महत्या कर लेते हैं। यही अहिन्दू आदर्श माता-पितामें, उनकी बुद्धिमें और विवेचनाशक्तिमें अश्रद्धा उत्पन्न कराकर तमाम प्राचीनताके प्रति मनको विद्रोही बना रहा है। आजकी शिक्षिता स्त्री इसीलिये अपनी सासके पैरोंमें सिर झुकानेमें या पतिकी सेवा करनेमें अपना अपमान समझती है। इस उच्च शिक्षाका आदर्श तो वही यूरोप है न जहाँ संगठितरूपसे पतियोंके विरुद्ध जेहादका झंडा उठाया जाता है और पतिघातिनी समितियाँ बनती हैं। स्त्री किसीके साथ हँसे-खेले, घूमने जाय, सिनेमामें जाय, शराब पीये, कुछ भी करे, पति या पिता-माता उसे कुछ कह ही नहीं सकते, क्योंकि यही तो सभ्यताका चिह्न

हा! भारतकी सतीशिरोमणि देवी! तू आज अपने पवित्र लक्ष्यसे भ्रष्ट होकर किस नरककुण्डकी ओर अग्रसर हो रही है!!!

विलासिता और फिजूलखर्चीका तो कहना ही क्या है ! पतिको चाहे बीस रुपये मासिककी नौकरी न मिलती हो, बीबीको तो अपनी मौज-शौक पूरी करने, फैशनका सामान खरीदने और सिनेमामें जानेके लिये पैसे जरूर चाहिये। कालेजकी लड़कियोंका यह हाल है कि आज-के केवल फैशनके पीछे पगली हो रही हैं। करोड़ों रुपयेकी व्यर्थ शृङ्गारकी वस्तुएँ इस फैशनके लिये विदेशोंसे आती हैं। घरका काम करना, झाड़ू देना, चक्की पीसना और रसोई बनाना उनके लिये अपमानका कारण बन गया है। भारत-सरीखे निर्धन देशमें कन्याओंको इस प्रकार शौकीन और खर्चालू बनाना और घरके कामोंसे विमुख करना अपार दुःखोंको निमन्त्रण देना है। यह बहुत बड़ा सामाजिक पाप है।

इससे मेरा यह मतलब नहीं है कि स्त्री अपने शरीरको मैला रक्खे, सफाईसे न रहे, गंदे कपड़े पहने या स्त्री-सुलभ उचित शृङ्गार न करे। ये सब कार्य तो विलासिताकी भावनाके बिना भी हो सकते हैं और होने चाहिये तथा इनमें खर्च भी अधिक नहीं होता। याद रखना चाहिये कि सौन्दर्य फैशनमें नहीं है, सौन्दर्य हृदयके आदर्श गुणोंमें है। सौन्दर्य बोल-चाल, रहन-सहन, आचार-व्यवहार, विनय-नम्रता, सचाई-सफाई, स्वास्थ्य और शक्ति आदिकी स्वाभाविक उच्चतामें है। जिसका हृदय सुन्दर और मधुर है, जिसके कार्य सुन्दर और मधुर हैं, वही सबसे बढ़कर सुन्दर है, फिर शारीरिक सौन्दर्यकी रक्षाके लिये भी उचित और कमखर्चीके पदार्थोंका यथासाध्य उपयोग करनेमें कोई बुराई नहीं है। बुराई तो फैशनकी गुलामीमें है। जहाँ फैशनकी गुलामी होगी, वहाँ उसकी पूर्तिके लिये धनकी भी विशेष आवश्यकता

होगी और वह धनकी आवश्यकता ही आज स्त्रियोंके स्वाभाविक गुण सरलताको कपटाचारके द्वारा पराजित करवा रही है।

उपर्युक्त दोषोंके अतिरिक्त स्त्रियोंमें कुछ स्त्रियोचित खास दोष और आ गये हैं, जिनमें सबसे प्रधान विवाहविच्छेद और सन्ततिनिरोधकी भावना, सब बातोंमें समान अधिकारकी अव्यावहारिक इच्छा और सिनेमाओंमें नाचनेका शौक है।

तलाक और सन्ततिनिरोध

विवाहविच्छेदकी भावना ही पवित्र दाम्पत्य-प्रेमका समूल न करनेवाली है। जिस हिंदू-संस्कृतिमें 'सपनेहुँ आन पुरुष जग नाह सतीत्वका आदर्श था, जहाँ हजारों कुल-ललनाएँ पवित्र सतीत्वकी रक्षा लिये जलती आगमें सहर्ष कूद पड़ती थीं, जहाँ दुर्दान्त रावणके चंगुल छूटनेकी सम्भावना होनेपर भी पुत्रके समान हनुमान्‌का इच्छापूर्व स्पर्श करना सीताने अपने सतीत्वके लिये कलंक समझा था; जहाँ मृ पतिकी लाशको गोदमें रखकर देहको सहर्ष भस्म कर डालनेमें गौर माना जाता था, वहाँकी कुलदेवियाँ आज अन्तःपुरके पर्दोंको फाड़क परपुरुषोंके बीचमें सभाओंमें खड़ी होकर यह कहनेमें भी नहीं हिचकतं कि 'सतीत्व एक कुसंस्कार है, यह पुरुषोंकी गुलामी है, इस गुलामी से छूटनेके लिये तलाक करनेका हमें हक है।'

लगभग ८६ वर्ष पहलेकी एक सच्ची घटना है। बंगालके राजशाही जिलामें पुँठिया नामक एक गाँव है। रानी शरत्सुन्दरी उसी गाँवके जमींदार योगेन्द्रनारायणकी पत्नी थी; योगेन्द्रनारायणकी मृत्यु हो गयी। रानी विदुषी थी। सोलह वर्षकी अवस्थामें कोर्ट आफ वार्ड्‌ससे अधिकार

मिलनेपर वह जमींदारीका काम बड़ी सावधानीसे चलाने लगी। एक बार राजशाहीके कलेक्टर मि० वालेसकी पत्नी रानीके गुण सुनकर उससे मिलने आयीं। इतनी छोटी उम्रमें मुँड़ा हुआ मस्तक, मोटे कपड़े और जमीनपर कम्बलके आसनपर रानीकी तपस्विनी मूर्तिको बैठी देखकर सहृदया मिसेज वालेसका हृदय भर आया। वह स्नेहके वेगको रोक न सकीं। सरल भावसे उन्होंने कहा, 'रानी! आपकी उम्र तो अभी बहुत छोटी है, आप विवाह क्यों नहीं कर लेतीं?' शरत्सुन्दरीने कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। मेम साहिबा उसे दुखी देखकर घबड़ायीं और क्षमा माँगकर चली गयीं। रानीको बड़ा दुःख हुआ। वह सोचने लगी कि हिन्दू विधवा स्त्रीके लिये पुनर्विवाहकी बात सुननेसे बढ़कर और क्या पाप होगा। रानीने इसका प्रायश्चित्त करनेके लिये कई दिनोंतक निर्जल उपवास किया। कहाँ तो पतिके मर जानेपर विवाहका नाम सुननेसे हिन्दू-स्त्रीका हृदय इस प्रकार पापकी भावनासे काँप उठता था, कहाँ आज जीते पतिको त्यागकर परपुरुषको वरण करनेकी घोषणा हिंदू-महिलाएँ भरी सभामें अपने मुँहसे करने लगीं!!!

इसीके साथ सन्ततिनिरोधका भी प्रश्न छिड़ा हुआ है। माना कि भारतके समान गरीब देशमें अधिक संतान माता-पिताके संतापका हेतु होती है, परंतु यह तो विधिका विधान है। पूर्वकर्म भी कोई वस्तु है, उसका फल सहज ही टल नहीं सकता। जिस जीवका जहाँ जन्म बदा है, वहाँ होगा ही, यह सिद्धान्त है; परन्तु यदि कोई इसे न माने तो भी सन्ततिनिरोधका सबसे बढ़िया तरीका इन्द्रिय-संयम है।

सन्ततिनिरोधकी आवश्यकता और साधन बतलानेवाली मिस सेंगर-जै
विदेशी रमणीके सद्भावोंका अनादर न करते हुए भी यह कहना
पड़ता है कि वे साधन भारतीय संस्कृतिके अनुसार नीति और
दोनों ही दृष्टियोंसे हानिकर ही नहीं वरं बड़े पापपरिपूर्ण हैं। इस प्रकार
सन्ततिनिरोधकी प्रणालीमें व्यभिचारकी वृद्धि और कामवासना
निष्कण्टक चरितार्थताकी संभावना ही प्रत्यक्षरूपसे छिपी है। महात्म
गाँधीने एक लेखमें लिखा था कि 'इन कृत्रिम साधनोंसे ऐसे
ऐसे कुपरिणाम आये हैं जिनसे लोग बहुत कम परिचित हैं। स्कूल
लड़के और लड़कियोंके गुप्त व्यभिचारने क्या तूफान मचाया है यह
मैं जानता हूँ××××× मैं जानता हूँ स्कूलोंमें, कालेजोंमें ऐसी अविवाहित
जवान लड़कियाँ भी हैं जो अपनी पढ़ाईके साथ-साथ कृत्रिम सन्तति-
निग्रहका साहित्य और मासिक पत्र बड़े चावसे पढ़ती रहती हैं और
कृत्रिम साधनोंको अपने पास रखती हैं। इन साधनोंको विवाहित स्त्रियों-
तक ही सीमित रखना असम्भव है और विवाहकी पवित्रता तो तभी
लोप हो जाती है जब कि उसके स्वाभाविक परिणाम संतानोत्पत्तिको
छोड़कर महज अपनी पाशविक विषय-वासनाकी पूर्ति ही उसका सबसे
बड़ा उपयोग मान लिया जाता है।' इससे यह सिद्ध हो जाता है कि
मनुष्योंके हृदयमें कृत्रिम सन्ततिनिग्रहके इस आन्दोलनसे पवित्रताके
स्थानपर किस प्रकार घृणित पाशविक कामका आधिपत्य हो रहा है,
और किस प्रकार हमारे अपरिपक्वमति बालक और बालिकाएँ इसके
शिकार होकर अपना सर्वनाश कर रहे हैं। इसी प्रकार सभी बातोंमें
समानता और तलाकके आन्दोलनमें भी बहुत अंशमें इस घृणित कामकी
ही प्रेरणा प्रधानरूपसे कार्य कर रही है!

समानाधिकार

आज यह कहा जाता है कि 'स्त्री-पुरुष दोनोंका समान अधिकार है; अतः स्त्रीको सब बातोंमें समानता मिलनी चाहिये। पुरुष बाजारमें जाता है, नौकरी करता है, खेल-तमाशेमें जाता है, सभा-समितिमें जाता है, कौन्सिलका मेम्बर बनता है और वकील-बैरिस्टर या जज बनता है। स्त्रीका इन सब बातोंमें ऐसा ही अधिकार क्यों नहीं होना चाहिये? यह पुरुषोंकी स्वार्थपरता है जो उन्होंने स्त्रियोंको आरम्भसे ही अपना गुलाम बनाये रखनेके लिये उनको धोखा देकर उलटा समझाया।' इस प्रकार आजकल पुरुष-विद्वेषकी भावना उत्पन्नकर स्त्रियोंको उकसाया जाता है और शिक्षिता कहलानेवाली माताएँ काफी उकसने भी लगी हैं। वे कहती हैं कि 'हम लड़कपनमें माता-पिताकी, जवानीमें पतिकी और वृद्धावस्थामें पुत्रकी संरक्षतामें क्यों रहें? क्या हम मनुष्य नहीं हैं? क्या हमें उतना ही हक नहीं है जितना पुरुषको है'; मायाका ऐसा ही चमत्कार है, शिक्षावारुणीका ऐसा ही नशा है जो इस बातको समझने ही नहीं देता कि समानाधिकारकी बात तो तब उठ सकती जब दो चीजें वस्तुतः अलग-अलग होतीं। हमारी संस्कृतिमें तो दम्पति स्त्री-पुरुषका एक सम्मिलित नाम है, दोनों परस्पर अर्द्धाङ्ग हैं। एक ही आत्माके दो व्यक्त स्वरूप हैं। ऐसी अवस्थामें पुरुषके साथ प्रतिस्पर्धा करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। रही शारीरिक स्वाधीनताकी बात, सो विधाताने स्त्री और पुरुषकी देहकी रचना ही ऐसे ढंगसे की है जिससे दोनोंकी सब बातोंमें कदापि समानता हो नहीं सकती। घरमें स्त्री रानी है, पुरुष उसकी रक्षामें है, उसका दिया हुआ भोजन पुरुषको खानेको

मिलता है। परन्तु बाहर स्त्रीको पुरुषकी संरक्षतामें रहना चाहिये। स्त्रीका शरीर सम्पूर्णरूपसे कभी स्वाधीन होने योग्य बना ही नहीं है। पुरुष बदन खोलकर आम रास्तोंपर घूम सकता है, स्त्री वैसे नहीं घूम सकती। जंगली स्त्रियाँ भी छातीपर कपड़ा डालकर बाहर निकलती हैं। आजकलकी नंगे सम्प्रदायकी पाश्चात्त्य स्त्रियाँ नंगी रहना चाहती हैं यह दूसरी बात है। परन्तु वहाँ भी आम तौरपर रास्तोंमें पुरुषकी भाँति स्त्री खुले अंग निर्भीक नहीं घूम-फिर सकती। ऋतुकालसे ही स्त्रीके सब अंगोंमें पुरुषके अंगोंके साथ विलक्षण रूपसे भेद बढ़ने लगता है। ऋतुकालमें उसकी रक्षाकी आवश्यकता होती है। उसे गर्भ धारण करना पड़ता है। गर्भकालमें उसकी देहमें कितने ही परिवर्तन होते हैं। कई तरहके विघ्नोंकी सम्भावना रहती है। उस समय उनसे बचनेके लिये दूसरेकी सहायता आवश्यक होती है। उसे कठोर शारीरिक और मानसिक श्रम तथा उद्वेगसे बचाव रखना पड़ता है। प्रसवके समय खास तौरपर देख-रेखकी जरूरत होती है। गर्भ और प्रसव दोनों ही समय उसके लिये कई आवश्यक नियमोंका पालन अनिवार्य हो जाता है। वह संतानकी जननी बनती है। भगवान् उसके स्तनोंमें दूध उत्पन्न करते हैं और वह स्नेहपूर्ण हृदयसे बच्चेका पालन-पोषण करती है, परन्तु पुरुषको इनमेंसे कुछ भी नहीं करना पड़ता।

नारी-हरणका नाम सुनते ही हमारा खून खौलने लगता है। पुरुष-हरणकी बात तो 'अमेरिकाको छोड़कर' कहीं नहीं होती। स्त्रीके शरीरमें तप, धीरज, तितिक्षा और पोषणकी शक्ति है, इसीसे वह इतना त्याग करती है। पुरुष वैसा नहीं कर सकता। परंतु यह

सत्य है कि देहकी दृष्टिसे स्त्री सदा निराश्रया है। हृदयकी दृष्टिसे वह पिता, पुत्र और पतिकी आश्रयस्वरूपा है। उसकी स्वाधीनता हृदयके क्षेत्रमें है, देहके क्षेत्रमें नहीं। इसी हृदयके बलपर स्त्री पुरुषपर सदा ही विजयिनी है। वह स्नेहकी मूर्ति, प्रेमका अवतार और वात्सल्यकी प्रतिमा है। इसीसे विद्या, पद, गौरव, मान-सम्मान आदिमें बहुत बढ़े-चढ़े पुरुष संध्याके समय घर आकर स्त्रीका आश्रय लेते हैं। स्त्रीका यह प्रताप शारीरिक शक्तिसे नहीं है, प्रेमशक्तिसे, हृदयशक्तिसे, सेवाशक्तिसे है। स्त्री यदि इस अनुपम हृदय-सम्पत्तिका तिरस्कार करके शारीरिक सम्पत्तिमें पुरुषकी प्रतिद्वन्द्विता करने लगेगी तो इससे दोनोंका ही अमंगल अनिवार्य है। स्त्री अपने इस विजयपदसे गिर जायगी, निराश्रय हो जायगी! और वह जितना ही इस क्षेत्रमें आगे बढ़ेगी उतना ही अपनी स्वाधीनता खोकर पुरुषके चंगुलमें फँस जायगी। आज वह पुरुषको नचाती है, अपने चरणोंपर गिराती है फिर उसे नाचना पड़ेगा। और पुरुष एक अपने परम मित्रको खोकर—दिनभर थका-माँदा घर आकर जिसके आश्रयसे, कुछ समयके लिये अपने सब दुःखोंको भूलकर सुखी हो जाता है—सर्वथा निराश्रय हो जायगा। परंतु क्या किया जाय, वर्तमान शिक्षाने स्त्रियोंको विपथगामिनी बना दिया है, इसीसे वे समानाधिकारके मोहमें पड़कर पुरुषविद्वेषका चश्मा चढ़ानेके कारण अपना हिताहित भूल रही हैं और पुरुषोंकी प्रतिद्वन्द्विता करनेके लिये अपने रानी पदका परित्याग कर बाजारमें निकल पड़ी हैं। इसीसे वे आज थियेटर, सिनेमा, सभा-समिति, कौन्सिल, अदालत और आफिसके फेरमें पड़कर अपने-आपको घृणित पराधीनताके पंजेमें फँसा देना चाहती हैं। इसीसे वे अपनी पोषणमयी प्रतिमाको बिगाड़कर

मातृत्वका बुरी तरह विनाश हो रहा है। इससे सिद्ध होता है कि स्त्री-पुरुषके लिये एक-सी शिक्षा सर्वथा अव्यावहारिक और हानिकारक है।

अब सहशिक्षापर विचार कीजिये। स्त्रियोंमें बहुत-से स्वाभाविक गुण हैं। उन्हीं गुणोंके कारण वे महान् पुरुषोंकी माताएँ बनती हैं। उन्हीं गुणोंका विकास करना स्त्री-शिक्षाका उद्देश्य होना चाहिये। परन्तु साथ ही यह भी याद रखना चाहिये कि जो चीज जितनी बढ़ी-चढ़ी होती है, वह उलटे मार्गपर चले तो उससे नुकसान भी उतना ही अधिक होता है। स्त्रीको उन्नत बनानेवाले त्याग, सहनशीलता, सरलता, तप, सेवा आदि अनेक आदर्श गुण हैं। परन्तु स्त्री यदि चरित्रसे गिर जाती है तो फिर उसके यही गुण विपरीत दिशामें पलटकर उसे अत्यन्त भयंकर बना देते हैं। और सहशिक्षासे प्रत्यक्ष ही व्यभिचारकी भावना उत्पन्न होती है। जिससे कोमलहृदया कन्याओंके चरित्रका नाश होते देर नहीं लगती।

स्त्री-पुरुषके शरीरका संगठन ही ऐसा है कि उनमें एक दूसरेको आकर्षित करनेकी विलक्षण शक्ति मौजूद है। नित्य समीप रहकर संयम रखना असम्भव-सा है। प्राचीन कालके तपोवनमें निर्मल वातावरणमें रहनेवाले जैमिनि, सौभरि, पराशर-सरीखे महर्षि और न्यूटन और मिल्टन-जैसे विवेकी पुरुष, और वर्तमान कालके बड़े-बड़े साधक पुरुष भी जब संसर्ग-दोषसे इन्द्रिय-संयम नहीं कर सके, तब विलासभवनरूप सिनेमाओंमें जानेवाले, गंदे उपन्यास पढ़नेवाले, तन-मन और वाणीसे सदा शृङ्गारका मनन करनेवाले, मौज-शौक तथा उच्छृङ्खलताके आदर्शको [illegible] माननेवाले, भोगवादको प्रश्रय देनेवाली

केवल अर्थकारी (?) विद्याके क्षेत्र कालेजोंमें पढ़नेवाले और यथेच्छ आचरणके केन्द्रस्थान छात्रावासोंमें निवास करनेवाले विलासिताके पुतले युवक-युवतियोंसे शुकदेवके सदृश इन्द्रिय-संयमकी आशा करना अपने-आपको धोखा देना है। परन्तु आज तो बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान् यूरोपका उदाहरण देकर सहशिक्षाका समर्थन कर रहे हैं, मतिवैचित्र्य है!!

कुछ लोग संस्कृत नाटकोंके आधारपर प्राचीन गुरुकुलोंमें सहशिक्षाका होना सिद्ध करते हैं; परन्तु उन्हें यह जानना चाहिये कि प्राचीन ग्रन्थोंमें कहीं भी कन्याओं और स्त्रियोंका ऋषियोंके आश्रममें जाकर एक साथ पढ़नेका प्रमाण नहीं मिलता; गुरुकन्याओंके साथ भाई-बहनके नाते ब्रह्मचारी गुरुकुलमें अवश्य रहते थे। परन्तु गुरुकुलोंमें अत्यन्त कठोर नियम थे। सभी बातोंमें संयम था और आजकलके कालेज-होस्टलोंकी तरह विलासिता और स्त्री-पुरुषकी परस्पर कामवृत्ति जगानेवाले साधन वहाँ नहीं थे। इतनेपर भी कच-देवयानीके इतिहासके अनुसार कहीं-कहीं आकर्षण होनेकी सम्भावना थी ही। अतः आजकलकी सहशिक्षाका समर्थन इससे कदापि नहीं हो सकता।

सिनेमा

सिनेमा भी आजकलकी सभ्यताका एक अङ्ग है और शिक्षित स्त्री-पुरुष सभ्यताके सभी अङ्गोंमें प्रवेश करना चाहते हैं, अतएव स्वाभाविक ही इधर भी उनका प्रवेश खूब हो रहा है। निःसंदेह चित्रपट एक कला है और संयमी, सदाचारी तथा निःस्वार्थ पुरुषोंके द्वारा इसका सदुपयोग हो तो इससे मनोरञ्जनके साथ ही बहुत कुछ उपकार भी हो सकता है। परन्तु उपकारकी जितनी सम्भावना है

उससे अधिक अपकारकी है। जन्म-जन्मान्तरके बुरे संस्कारोंके कारण प्रायः मनुष्य बुरी बातोंको जितनी जल्दी ग्रहण करता है, उतनी अच्छी बातोंको नहीं करता। कथानक अच्छे-से-अच्छा हो, सब बातें शिक्षाप्रद हों तथापि उसमें कुछ-न-कुछ तो शृङ्गार-रस रखना ही पड़ेगा। जहाँ स्त्रियोंके पार्ट पुरुष करते हों वहाँ तो विशेष आपत्तिकी बात नहीं है, परन्तु जहाँ स्त्रियोंके पार्ट स्त्रियाँ करेंगी, वहाँ वे चाहे कितने ही उच्च घरानेकी हों, और पुरुषमात्र कितने ही सच्चरित्र हों, नित्यके संगसे उनके द्वारा प्रमाद होनेकी सम्भावना है ही! नर और नारीके शरीरोंकी प्रकृतिने रचना ही ऐसी की है कि उनमें परस्पर शारीरिक मिलनकी इच्छा उत्पन्न हो ही जाती है। फिर युवावस्थामें तो यह मिलनेच्छा बड़ी तीव्र होती है, ऐसी अवस्थामें नित्य साथ रहकर, शृङ्गारके पार्ट कर-कर पद्मपत्रवत् निर्लेप बने रहना असम्भव-सा ही है। नित्यके अबाध संगमें इन्द्रिय-संयम बना रहना मामूली बात नहीं है। बड़े-बड़े वनवासी फल-मूलाहारी तपस्वी महान् विद्वान् और ऊँचे साधक भी तीव्र आकर्षणके प्रभावसे जब इन्द्रियोंके वश हो जाते हैं तब शृङ्गारकी लीलाभूमि सिनेमामें रहनेवाले जवान उम्रके साधारण अभिनेताओं और अभिनेत्रियोंकी तो बात ही कौन-सी है! इस भारी पतनकी आशङ्का तो सिनेमा-जगत्‌में पर्याप्त सुधार—जिसकी आशा नहीं है—होनेपर भी रहेगी ही; वर्तमान सिनेमाओंमें तो पद-पदपर सबके पतनके लिये गहरी खाइयाँ खुदी हैं। गंदे गाने, अश्लील मजाक, अर्द्धनग्नावस्थाके नाच, शृङ्गारसे पूर्ण कथानक, मिस कहलानेवाली एक्ट्रेसोंके गंदे हावभाव, सभी चीजें नरकके दरवाजे हैं। चित्रपट इस समय धन कमानेका पूरा साधन बन गया है;

अधिक-से-अधिक धन कमाना ही संचालकोंका उद्देश्य है। करोड़ोंकी पूँजी लगाकर व्यापारी इस क्षेत्रमें धन कमानेके लिये कूद पड़े हैं। कलाका विकास और शुद्ध भावोंका प्रचार प्रायः किसीका उद्देश्य नहीं है। इसीलिये जिन-जिन सामग्रियोंसे जनता अधिक आकर्षित होती है, उन्हींको एकत्रकर प्रदर्शन करना सिनेमा-संचालकोंका कर्तव्य हो गया है फिर चाहे उनसे जनताकी रुचि बिगड़े, वह आचरणभ्रष्ट हो और सदाके लिये नरकके गढ़ेमें क्यों न गिर पड़े। जनताके पतनकी जिम्मेदारीका ख्याल किसीको नहीं है। ध्यान है तो केवल धनका है। और यह धनका ध्यान केवल संचालकोंको ही नहीं है, सिनेमाओंसे संलग्न प्रायः सभी लोगोंको है। नहीं तो गंदे साहित्यके द्वारा गंदे फिल्म कैसे बनते और क्योंकर उनका प्रदर्शन सम्भव होता? खेदकी बात है कि इस समय भले घरोंकी शिक्षिता कहलानेवाली महिलाएँ भी अपनी आर्योचित उच्च कुलमर्यादाको त्याग कर सिनेमाओंमें परपुरुषोंके साथ मिलकर अभिनय करनेमें गौरवका अनुभव तथा उन्नतिका गर्व करने लगी हैं। यह पतनका प्रत्यक्ष चिह्न है। पता नहीं वे किसी भुलावेमें आकर ऐसा कर रही हैं या कलाकी आड़में आर्थिक प्रलोभनमें पड़कर! अभी कुछ दिनों पहले एक एक्ट्रेसका अनुभव पत्रोंमें छपा था; उसके अनुसार यह कहा जा सकता है कि एक्ट्रेस बनकर सिनेमामें अभिनय करनेवाली नारियोंका चरित्रवान् रहना अत्यन्त ही कठिन है। प्रायः यही हाल पुरुष एक्टरोंका समझना चाहिये। अधिकांश संचालकोंके लिये भी कुसंगतिका शिकार होना अनिवार्य है। समाजका दुर्भाग्य है कि स्कूल-कालेजोंके छात्र-छात्राओंका सिनेमा-शौक दिनोंदिन बढ़ रहा है और वे बुरी तरह कुप्रवृत्तियोंके शिकार हो रहे हैं। सिनेमाके साथी शराब

और वेश्याओंके फेरमें पड़कर उनका सर्वनाश हो रहा है। गतवर्ष कुछ धर्मशीला युवती स्त्रियोंने पूछा था कि हमारे शिक्षित पति हमें जबरदस्ती सिनेमाओंमें और क्लबोंमें ले जाकर गंदे खेल दिखलाना और मांस-शराब खिलाना-पिलाना चाहते हैं, ऐसी अवस्थामें हम क्या करें !!

आजकल पत्रोंके द्वारा भी इन सिनेमाओंके प्रचारमें काफी सहायता मिल रही है। विज्ञापनोंकी आमदनीके प्रलोभनसे पत्र-पत्रिकाओंके संचालक, सम्पादकगण भी सिनेमासम्बन्धी साहित्य और सिनेमाके पात्र-पात्रियोंके चित्र खास करके पात्रियोंके आकर्षक चित्र छापकर जनताका चित्त उधर खींच रहे हैं। मैं अपने सम्मान्य पत्र-सम्पादक भाइयोंको उनके नैतिक दायित्वकी बात याद दिलाकर प्रार्थना करना चाहता हूँ कि वे इस ध्वंसकारी प्रवाहके रोकनेमें सहायक हों। जो साहित्य कोमलमति बालकोंके और प्रबल इन्द्रियोंके वेगको न सह सकनेवाले अनुभवहीन नयी उम्रके युवक-युवतियोंके हृदयमें कलाके नामपर जघन्य वृत्तियोंको जाग्रत् कर देता है, जो उनके हृदयमें कुवासना और कुप्रवृत्तियोंकी आग सुलगाकर उनमें बार-बार ईंधन डालकर उसे भड़काता है, वह साहित्य कदापि हितकर नहीं हो सकता। समाजरूपी वाटिकामें खिलते हुए तरलमति युवक-युवतियोंके कोमल हृदयमेंसे दैवी सद्भावोंको हटाकर उनकी जगह आसुरी भावोंको पैदाकर उसमें नरककी आग जला देनेवाली कला तो प्रत्यक्ष काल ही है। साहित्यकारोंको चाहिये कि नवयुवक और नवयुवतियोंके सामने पवित्र वस्तुएँ रक्खें। उनके हृदयमें वीरता, धीरता, संयम और सदाचारकी वृद्धि हो, ऐसा साहित्यामृत उन्हें पिलावें। हमारी प्राचीन गुरुकुलकी शिक्षापद्धतिके अनुसार तो किसी भी छात्र

अच्छा है । जिस विद्यासे सद्गुण रह सकें और बढ़ सकें, उसी विद्या पढ़ाकर नारियोंको विदुषी बनाना चाहिये और इसकी आवश्यकता है । क्योंकि सद्गुणोंका विकास और उनके उचित प्रयोगोंके द्वारा यथे लाभ सद्विद्यासे ही हो सकता है । परंतु जिस विद्याके प्रभावसे स गुण नष्ट होते हों, वह विद्या तो हानिकर ही है । ऐसी हालतमें त सद्गुणोंको बचानेके लिये विद्याका मोह छोड़ देना ही बुद्धिमानी है आजकल जिस प्रकारकी स्त्रीशिक्षाका प्रचार हो रहा है, उससे तो समाज का अमङ्गल ही दिखायी देता है ।

नम्र निवेदन

उपर्युक्त विवेचनमें वर्तमान शिक्षाके कुफलका दिग्दर्शनमात्र करा गया है । ऐसे और भी बहुत-से दोष इस शिक्षासे पैदा हुए हैं, जिनक उल्लेख नहीं हो सका है । उदाहरणार्थ उनमें एक दोष भेदभाव और परस्पर वैमनस्यकी वृद्धि है । इस शिक्षाके प्रतापसे खान-पान और विवाह-शादी आदिमें उचित भेदको मिटानेवाली नामकी राष्ट्रीयता तो बढ़ी है, परंतु पारस्परिक प्रेम और सौहार्द बुरी तरहसे घट गया है जैसे यूरोपकी देशभक्ति (Patriotism) में विश्वहितकी तो बात ही क्या, पड़ोसी राष्ट्रके हितकी भी परवा नहीं है, वैसी ही विश्वहित-विरोधिनी संकुचित देश-भक्तिका प्रचार यहाँ भी हो रहा है । आज जातिभेद मिटानेकी तो बातें हो रही हैं परंतु प्रत्येक जाति-उपजातिका भेद मजबूतीसे कायम रखनेके लिये प्रतिद्वन्द्विताके भावोंसे पूर्ण जातीयकान्फरेंसोंकी बाढ़-सी आ गयी है और सभी अपना-अपना अलग स्वत्व कायम करना चाहते हैं । समस्त भारतवासियोंके एक स्वार्थ होनेकी बात तो दूर रही, आज हिंदू-हिंदूमें

और मुसल्मान-मुसल्मानमें भी वस्तुतः एक स्वार्थकी भावना नहीं रही है । हिंदुओंमें तो जैन, सिख, आर्यसमाज, ब्राह्मसमाज आदि अनेक नये-नये भेद हो गये हैं और उनकी संख्या क्रमशः बढ़ती जा रही है । सैकड़ों जातियों-उपजातियोंमेंसे एक-एक उपजातिके अलग-अलग अनेकों भेद हो गये हैं और सबकी स्वार्थदृष्टि अलग-अलग हो गयी है । अग्रवाल-सभा, अग्रवाल-पंचायत, अग्रवाल-युवक-मण्डल, माहेश्वरी डीडूपंचायत, माहेश्वरी-महासभा आदि-जैसी सैकड़ों विभिन्न संस्थाएँ इसका प्रमाण हैं । पहले एक वैश्य-सभा थी, अब वैश्यवर्णके अन्तर्गत विभिन्न उपजातियोंकी न मालूम कितनी सभाएँ हैं । अधिक क्या, किसी दिन 'वसुधैव कुटुम्बकम्' या 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के आदर्शको माननेवाली जातिके महान् आदर्शको नष्ट करके आजकी इस शिक्षा-प्रणालीने स्त्री-पुरुष (दम्पति) में भी पृथक्-पृथक् स्वार्थकी भावना उत्पन्न करके उन्हें ड़ाईके मैदानमें लाकर खड़ा कर दिया है ! अभेदके नामपर ऐसा नाशकारी भेद फैल गया है कि आज हम अपने अकेले व्यक्तित्वकी क्षा और उसीके पोषणमें जीवन बिताना कर्तव्यकी चरम सीमा समझने गे हैं !! सभी विचारशील पुरुष इन दोषोंको जानते और अनुभव करते हैं और यथासाध्य इन्हें दूर करनेका प्रयत्न भी कर रहे हैं; तथापि मैं एक बार पुनः सभी शिक्षा-प्रचारक और शिक्षाप्रेमी महानुभावोंसे विनयपूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि वे इस विषयपर और भी गम्भीरतासे विचार करें और शिक्षा-प्रणालीमें यथासाध्य तुरंत परिवर्तन करने-करानेका प्रयत्न करें । मेरी तुच्छ सम्मतिमें नीचे लिखी बातोंपर ध्यान देनेसे शिक्षा-प्रणालीके बहुत-से दोष नष्ट हो सकते हैं और शिक्षाके असली उद्देश्यकी किसी अंशमें पूर्ति हो सकती है ।

१—पाठ्य-पुस्तकोंमें हमारी प्राचीन आर्य-संस्कृतिका सच्चा महत्त्व बतलाया जाय, पौराणिक और ऐतिहासिक महापुरुषोंके जीवनकी प्रभावोत्पादक और शिक्षाप्रद घटनाओंका सच्चा वर्णन रहे और प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थोंके उपयोगी अंशोंका समावेश किया जाय।

[याद रखना चाहिये कि जिस जातिकी अपनी संस्कृति, अपने महापुरुष और अपने सत्-साहित्यपर अश्रद्धा हो जाती है, वह जाति प्रायः नष्ट हो जाती है। वर्तमान शिक्षाने ऐसे विलक्षण ढंगसे यह काम किया है कि हम उसे उन्नति समझ रहे हैं और हो रहा है हमारा सर्वनाश! इस शिक्षाके प्रभावसे आज अपनी संस्कृतिमें, अपने पूर्वपुरुषोंमें और अपने प्राचीन साहित्यमें हमारी श्रद्धा नहीं रही है और इस बदले पाश्चात्त्य सभ्यता, यूरोपके महापुरुष और उनके साहित्यपर हमा श्रद्धा हो गयी है। मेरे कहनेका यह अभिप्राय नहीं कि कहींकी भी अच्छ चीजका आदर न किया जाय। आदर तो अवश्य करना चाहिये, पर इतनी आत्मिक गुलामी तो नहीं होनी चाहिये कि हमारे घरकी चीजक ओर हम देखें ही नहीं, कभी देखें तो उपेक्षासे या घृणाकी दृष्टिसे; औ वही चीज विदेशी विद्वानोंकी लेखनीसे प्रशंसित होकर उनके द्वा विकृतरूपमें हमारे सामने आवे तब हम उसीको सिर चढ़ाने लगें।

२—ईश्वर और धर्मके ठोस संस्कार बालकोंके हृदयोंमें जमें, ऐसी बातें पाठ्य-पुस्तकोंमें अवश्य रहें। गीता-जैसे सर्वमान्य ग्रन्थको उच्च शिक्षामें रक्खा जाना चाहिये।

३—सदाचार और दैवी सम्पत्तिको बढ़ानेवाले उपदेश सदाचारी और दैवीसम्पत्तिसम्पन्न पुरुषोंके चरित्रसहित पाठ्य-पुस्तकोंमें रहें और उनका विशेषरूपसे महत्त्व बतलाया जाय।

४—धार्मिक शिक्षाकी स्वतन्त्र व्यवस्था भी हो जिसमें १ ईश्वर-भक्ति, २ माता-पिताकी भक्ति, ३ शास्त्रभक्ति और देशभक्ति, ४ सत्य, ५प्रेम, ६ब्रह्मचर्य, ७अहिंसा, ८निर्भयता,९ दानशीलता, १० निष्कपट व्यवहार, ११ परस्त्रीको मा-बहिन समझना, १२ किसीकी निन्दा न करना, १३ किसी भी दूसरे धर्म या धर्माचार्यको नीची निगाहसे न देखना, १४ आजीविका आदिके कार्योंमें छल, कपट और चोरीका त्याग, १५ शारीरिक श्रम या मेहनतकी कमाईका महत्त्व और १६ सबसे प्रीति करना—इन १६ गुणोंपर विशेष जोर दिया जाय और बालकोंके हृदयमें उनके विकास और विस्तार करनेकी चेष्टा की जाय। प्रतिदिन पढ़ाई आरम्भ होनेके समय सब अध्यापक और विद्यार्थी मिलकर ऐसी ईश्वर-प्रार्थना करें, जिसके करनेमें किसी भी धर्मके बालकको आपत्ति न हो।

५—अवतारों और महापुरुषोंकी जन्मतिथियोंपर उत्सव मनाये जायँ और उनके जीवनकी महत्त्वपूर्ण बातोंपर प्रकाश डाला जाय।

६—खान-पानकी शुद्धि और संयमके महान् लाभ बालकोंको समझाये जायँ।

७—किसी भी पाठ्य-पुस्तकमें खुले शृङ्गारका वर्णन न हो। ऐसा कोई काव्य या नाटक पढ़ाना आवश्यक हो तो उसमेंसे उतना अंश पढ़ाईके क्रमसे निकाल दिया जाय। [मैंने सुना है कि कई पाठ्य-पुस्तकोंके ऐसे पाठ अच्छे अध्यापक अपने विद्यार्थियोंको नहीं पढ़ा सकते और बालिकाओंको तो वैसा पाठ आ जानेपर विचारशील प्रोफेसर जितने दिनोंतक वह पाठ चलता है, उतने दिनोंके लिये उस पीरियडमें अनुपस्थित रहनेकी अनुमति देनेको बाध्य होते हैं।]

८—साम्प्रदायिक विद्वेष बढ़ानेवाली बातें किसी भी प पुस्तकमें नहीं रहनी चाहिये।

९—विलासिता और फिजूलखर्चीके दोष पाठ्य-पुस्तकोंमें बत जायँ। जहाँतक हो विद्यार्थियोंका जीवन अधिक-से-अधिक स और निर्मल रहे, ऐसी चेष्टा हो।

१०—जहाँतक हो शिक्षा देशी भाषामें देनेकी व्यवस्था की जा

११—अध्यापक और छात्रावासके व्यवस्थापक ऐसे सज्जन जो स्वयं सदाचारी, धार्मिक, ईश्वरमें विश्वासी, विलासिताके विरो और मितव्ययी हों। (याद रहे, अध्यापकों और व्यवस्थापक चरित्रका प्रभाव बालकोंपर सबसे अधिक पड़ता है।)

१२—सभी शिक्षालयोंमें कुछ-न-कुछ हाथकी कारीगरीका का जरूर सिखाया जाय, जिससे कालेजोंसे निकले हुए विद्यार्थी शारीरि परिश्रम तथा कारीगरीका काम हाथसे करनेमें सकुचावें नहीं, व सम्मानका अनुभव करें।

१३—छात्रावास बहुत सादे और संयमके नियमोंसे पूर्ण हों वहाँ विद्यार्थीगण यथासाध्य सभी काम हाथसे करें, जिससे घर आनेप हाथसे काम करना बुरा न मालूम हो। तन-मनसे पवित्र रहनेक आदत डाली जाय। शरीरकी सफाई देशी तरीकेसे की जाय। अवकाशके समय कथा आदिकी व्यवस्था हो।

१४—जहाँतक हो, स्कूल-कालेज प्राकृतिक शोभायुक्त स्थानोंमें हों, खास करके पवित्र नदीके तटपर; उनमें यथासाध्य खर्चीला सामान, विदेशी फैशनका फरनीचर आदि न रहे।

१५—माता-पिता, गुरुके प्रति आदर-बुद्धि हो, उनका सेवन और करना कर्तव्य समझा जाय, किसीका भी अनादर न हो, का मखौल न उड़ाया जाय। ऐसी शिक्षा बालकोंको दी जाय।

१६—लड़के-लड़कियोंको एक साथ बिल्कुल न पढ़ाया जाय।

१७—लड़कियोंके पढ़ानेके लिये सदाचारिणी और सद्गृहस्था ापिका ही रहें, और कन्यापाठशालाओंकी पढ़ाई स्वतन्त्र रहे तथा ईका समय भी गृहस्थकी सुविधाके अनुकूल हो।

१८—लड़कियोंकी शिक्षामें इस बातका प्रधानरूपसे ध्यान रक्खा य कि बड़ी होनेपर उनके सतीत्व, मातृत्व और सद्गृहिणीपनका श न होकर पूर्ण विकास हो।

१९—आर्य संस्कृतिके अनुकूल सद्व्यवहार, सेवा-शुश्रूषा और ाहार-व्यवहारकी शिक्षा पाठ्य-पुस्तकोंमें रहे।

२०—सात्त्विक त्याग, तितिक्षा और सात्त्विक दानकी शिक्षा ी जाय।

२१—बलका संचय और सदुपयोग करना सिखाया जाय।

क्षमाप्रार्थना

दोष देखना एक घृणित कार्य है, और इसलिये कर्तव्यवश इस कार्यको करनेवाला मैं अपना दोष स्वीकार करता हूँ और उन महानुभावोंसे सविनय क्षमा चाहता हूँ जिनको इस लेखके पढ़नेपर कुछ भी मेरा अपराध जान पड़े। एक बात और है। इस लेखसे मेरा यह मतलब कदापि नहीं है कि मैं पाश्चात्य शिक्षाप्राप्त पुरुष और स्त्रीमात्रको ही

परमात्माकी विस्मृति

आजके युगमें आरम्भसे अन्ततक एक यही विषय है कि परमपिता परमात्माको भूल गये हैं । ये शब्द प्रसिद्ध विद्वान् कार्लाइ के हैं, जो उन्होंने विज्ञान और साम्राज्यवादके विस्तारके फलस्वर पाश्चात्त्य जगत्के मानवमात्रकी घातुप्रियता तथा कलहप्रिय प्रवृत्ति दुखी होकर कहे थे । साम्राज्य अब विश्वके मानचित्रसे गायब गये हैं और विज्ञान भी अपनी चरम सीमाको पार कर चुका है अतः पश्चिममें एक नवीन ज्ञान-ज्योतिका प्रादुर्भाव हो रहा है । प हम पूर्वनिवासी अब भी शासन और विधायकोंके अंदर प्रभु विस्मृत करते जानेकी प्रवृत्ति देखते हैं, जिसकी निन्दा कार्लाइल अपने समयमें की थी । मैं राष्ट्रिय विकासके लिये आधारभूत इ महत्त्वपूर्ण सत्यकी ओर विचारकोंका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ

श्रेष्ठ चरित्रकी अनिवार्य आवश्यकता

चरित्रका अच्छा होना शारीरिक शक्ति एवं बुद्धिकी प्रखरता भी अधिक महत्त्वपूर्ण है । देशके अंदर शान्ति-स्थापना एवं बाहरी आक्रमणसे उसकी रक्षाके निमित्त नागरिक प्रशासन तथा सैनिक व्यवस्थाके लिये जनसमुदायमेंसे पर्याप्त संख्यामें लोगोंका शारीरिक एवं मानसिक दृष्टिसे शक्तिशाली होना आवश्यक है; किंतु देशकी उन्नति तथा चतुर्मुखी विकासके लिये जीवनके दैनिक कार्योंको मिल-जुलकर एक दूसरेके सहयोगसे करनेवाले समस्त नागरिकोंके चरित्र-

धार्मिक शिक्षा प्रदान न की तो इन गुणोंका आविर्भाव हम नागरिकोंमें नहीं कर सकते। विभिन्न धार्मिक मान्यताओंको समाप्तकर उनके चलानेवालोंको केवल कल्पित व्यक्ति मानना विनाशकारी है। ईसामसीह, भगवान् बुद्ध, मुहम्मद साहब, भगवान् राम, कृष्ण आदिको यदि हम भौतिक दृष्टिकोणसे केवल कल्पित व्यक्ति ही मान लें तो ईसाई, मुस्लिम, बौद्ध तथा हिंदू-धर्मोंमें रह ही क्या जायगा।

राष्ट्रिय चरित्रका ह्रास न हो, इसके लिये हमें प्रत्येक छात्रको स्कूलमें उसके अपने पारिवारिक धर्ममें दीक्षित करना होगा। इस कार्यसे अव्यावहारिकता कहीं नहीं है। विज्ञानको संसारने एक बार विजेताके रूपमें प्रदर्शित किया था, परंतु अब वही विज्ञान धर्मका सबसे बड़ा सहयोगी है। उच्च विज्ञान भौतिकवादके दृष्टिकोणको त्यागकर अब आत्मिक विकास तथा उपनिषदोंकी भाँति देवत्वकी ओर ले जानेवाला बन रहा है, किंतु विज्ञान धार्मिक विश्वास और दैवी गुणोंके विकासमें तभी सहायक हो सकता है, जब मनुष्यको बचपनमें ही उसके अनुकूल शिक्षित किया जाय। मेरी कामना है कि हम भारतीय केवल भौतिक चमक-दमक एवं बाह्य प्रसन्नताके चक्करमें ही न पड़े रहें; परंतु यह सब बिना धर्मके नहीं हो सकता। इसलिये चरित्रवान् भारतीयोंके निर्माणके लिये स्कूलोंमें प्रत्येक लड़के और लड़कीको धार्मिक शिक्षा देना अनिवार्य होना चाहिये।

सच्ची शिक्षा

सङ्गसे ही आदमी अच्छा-बुरा बनता है, सङ्ग केव मनुष्यका नहीं, इन्द्रियोंके विषयमात्रका ही अच्छा-बुरा स होता है। अच्छे सङ्गका सेवन करो, बुरा सङ्ग सदा छोड़ो कानसे बुरी बात मत सुनो, आँखोंसे बुरी चीजें मत देखे जीभसे बुरी बात मत कहो, हाथसे बुरा काम मत करो पैरसे बुरी जगह मत जाओ, मनसे बुरा चिन्तन मत करो और बुद्धिसे बुरे विचार मत करो। तुम सब बुराइयोंसे आ ही छूट जाओगे!

(कल्याण-कुञ्ज)

ॐ

सिनेमा—
मनोरञ्जन या विनाशका साधन?

लेखक—

हनुमानप्रसाद पोद्दार

और वे लाखों मनुष्योंकी पापदृष्टि और पापभावनाकी शिकार बनें एवं
युवकोंके मनोंमें कलुषित पापभावनाको उत्पन्न करके उनके मूल्य
जीवनके सर्वनाशका कारण बनें। यह मनोरञ्जनकी सामग्री है या मान
पतनकी ? ××× आप उपाय बताइये, मैं क्या करूँ ×××× ।

ऐसे कई पत्र और मिले हैं। पिछले दिनों एक पत्र
कालेजके विद्यार्थीका मिला था। बड़े साइजके लगभग १३॥ पृ
पत्र है। उसमें सिनेमाके परिणामस्वरूप उस युवकका कै
कितना और किस प्रकार पतन हुआ, इसका मर्मभेदी उल्लेख
पत्रमें लिखी घटनाएँ ऐसी बीभत्स और भयानक हैं कि उन
प्रकाशित करना—कम-से-कम 'कल्याण'-सरीखे पत्रमें सम
नहीं। घटनाओंकी बातें छोड़कर उस पत्रके यत्र-तत्रके
उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।

**"× × × मैं कालेजका एक नवयुवक विद्यार्थी हूँ। ×
मेरे पिताजी गरीब हैं; लेकिन मैं इकलौता लड़का हूँ, इसलि
वे मुझे कालेजमें पढ़ाते हैं। पिताजीका मुझपर यह एतबार
कि 'मेरा पुत्र होनहार है', लेकिन × × ×। मैं सिनेमाका प
जबरदस्त शौकीन हूँ × ×। दारूके व्यसनके समान यह व्यस
है। × × जब पैसा नहीं होता, तब किताबें बेचकर क्षणि
सुख (सिनेमा-दर्शन) प्राप्त करता हूँ। × × ×। माता-पिता
भुलाकर फिरसे किताबें खरीदता हूँ। बेचारे पिता समझते हैं-
'कालेजकी पढ़ाई बड़ी ऊँची होती है, अतः किताबें जरूर लगत
होंगी।' × × × मेरे पिताजी कौड़ी-कौड़ी जमा करके मुझे पढ़
रहे हैं। मेरे बाबत उन्हें बड़ी उम्मीदें हैं, पर ये सारी उम्मी
डूब जायँगी। × × × माता-पिताजी शोक करेंगे ! हमेश**

सुरैया, × × × × × × × राजकपूर, उषा किरन, दुर्गा खोटे, बेबी शकुन्तला, शकुन्तला, आशा, उल्लास, जयश्री, दिलीप-कुमार (सब मिलाकर ३२ नाम लिखे हैं) × × × × ऐसे कितने ही नट-नटियोंके नाम मेरे मुखमें रहते हैं। आजतक करीब ३०० सिनेमा मैंने देखे हैं × × × ×। सिनेमा विज्ञानकी एक देन है। लेकिन हमारे निर्माता, प्रोड्यूसर आदि उसका दुरुपयोग कर रहे हैं। × × × मेरे शरीर और मनका घोर पतन हो चुका है! मैं पड़ोसी बहिनको बहिन और माताकी बहिनको मौसी कहने लायक नहीं हूँ। (इसके बाद शारीरिक और मानसिक घोर पतनके बहुत-से अत्यन्त वीभत्स और भीषण उदाहरण दिये हैं)। × × × मेरी पढ़ाई खतम हो गयी है। मैं सिनेमाकी बलि होता जा रहा हूँ। × × × (इसके बाद चित्रोंके नाम दे-देकर उनमें नटियोंके द्वारा दिखाये जानेवाले अङ्गसंचालनके तथा कामोत्तेजक दृश्योंके वीभत्स उदाहरण दिये हैं) × × ×

"हमारे आधुनिक हिंदी सिनेमामें सिर्फ नटियोंको नग्नावस्थामें दिखलाना ही शेष रह गया है। अंग्रेजी सिनेमामें तो वह भी दिखाया जाता है। × × ×

आगे चलकर वह नवयुवक लिखता है—"यह सब लिखनेका मतलब यह है कि हमारी सरकार इन बातोंपर ध्यान क्यों नहीं देती? क्या उसका यह कर्तव्य नहीं होता? सेंसर-बोर्ड क्यों इजाजत देता है, समझमें नहीं आता। × × × × हम नवयुवक बहुत ही बुरी स्थितिमें हैं। हमारे चारों ओर प्रलोभन हैं, मन-इन्द्रियाँ काबूमें नहीं, कोई हमें बचानेवाला नहीं। यह

हालत मेरे-जैसे बहुतोंकी है। × × ×” यों अपनेको सिनेमा
बुराइयोंका बुरी तरह शिकार होना विस्तारसे बतलाकर अन्त
नवयुवक भाई लिखता है।

“इसी तरह मैं और थोड़ा लिखना चाहता हूँ, क्षमा करें।
हमारे लेखकगण भी कामोत्तेजक पुस्तकें लिखते हैं। (एक
लेखकका नाम दिया है) उनकी ×××× पुस्तक इसका प्रमाण
है। उसमें ऐसा वर्णन है कि पढ़नेसे जरूर शुक्रनाश हो
जाता है।”

“हमारे युवकोंके आस-पास ऐसी विचित्र परिस्थिति आ
पड़ी है कि उससे हम हरगिज छुटकारा नहीं पा सकते। अतः
मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि मुझे इससे कैसे छुटकारा
मिलेगा ? क्या आप कुछ बता सकेंगे ? क्या आप तसल्लीबख्श
जवाब दे सकेंगे ? क्या आप हमलोगोंको सुपथपर ला सकेंगे ?”

“क्या बताऊँ, कालेजके अध्यापकगण भी कुछ नहीं कहते
× × × × कुछ प्रोफेसर अच्छे भी होते हैं, पर बहुत
कम। × × ×”

“हमारे एक प्रोफेसरने समस्त विद्यार्थियोंके सामने
लेक्चरमें कहा था कि अपने पतिके × × से संतति न हो तो
[औरतोंको] किसीसे भी ×××××× पाप नहीं है।’ क्या हम-
जैसे नवयुवक तथा नवयुवतियोंके सामने ऐसा कहना उचित
है ? [जिस समय प्रोफेसरने ऐसा कहा] उस समय सब
विद्यार्थी युवतियोंकी तरफ देखने लगे। उनके देखनेका कौन-सा
मतलब हो सकता है ? ×××××”

इसके आगे कई पंक्तियाँ और लिखकर विद्यार्थी बड़े निराशा-भरे शब्दोंमें अपने पत्रको पूरा करता है।

किसी उच्च अधिकारीके सामने इस प्रश्नके लाये जानेपर यह कहा गया कि 'बात ठीक है, पर 'मनोरञ्जन'के लिये क्या व्यवस्था की जाय। मनोरञ्जनकी कोई-न-कोई व्यवस्था किये विना सिनेमाका त्याग सम्भव नहीं !?' बात बहुत ठीक है। 'मनोरञ्जन'का प्रश्न इस समय बहुत महत्त्वका हो गया है। घर-द्वार फूँककर, धर्म-कर्म खोकर, शील-संकोच और लज्जा-मर्यादाका नाश करके भी 'मनोरञ्जन' करना है। 'मनोरञ्जन' का इस प्रकारका यह महारोग बहुत नवीन है, पर यह बहुत ही व्यापक हो गया है। राजरोग न ठहरा ! अतः उन अधिकारी महोदयका कथन सर्वथा सत्य है। सचमुच सिनेमाका हमारे युवक-युवतियोंपर इतना गहरा प्रभाव है कि सरकार कहीं सिनेमा बंद करनेकी सोचे तो इतना घोर प्रतिवाद हो कि सरकारको लेनेके देने पड़ जायँ। यह सब सच होते हुए भी **क्या यह वाञ्छनीय है कि मनोरञ्जनके नामपर सिनेमाके इस पापको यों ही उत्तरोत्तर बढ़ने दिया जाय और हमारा तरुणसमाज उसका बुरी तरह शिकार होकर अपने जीवनसे हाथ धो बैठे और हमारे राष्ट्रका भविष्य अन्धकारमय हो जाय ?** इस प्रश्नपर बड़ी ही गम्भीरतासे विचार करना होगा।

कुछ वर्षों पहले किसी तामिळ पत्रके सम्पादकको किसी 'सिनेमा-स्टार' के बाबत अश्लील बातें प्रकाशित करनेके अपराधमें मद्रासके चीफ प्रेसीडेंसी मैजिस्ट्रेटने जुर्मानेका दण्ड देते हुए कहा था—

खाते-खाते हमें केवल रुचिपरिवर्तनके लिये कभी मिठाई खानी पड़ती है। एक समय था, जब सिनेमा मनोरञ्जनके साधनोंमें गिना जाता होगा, परंतु आज उसका असर यत्र-तत्र सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। आज सिनेमा जीवनपर संस्कार करनेका एक स्थायी एवं आकर्षक साधन है। अनुभव तो यह कहता है कि जो शिक्षा तथा संस्कार माता-पिता अपने पुत्रपर और शिक्षक अपने शिष्यपर नहीं डाल सकते, वे ही और उनसे कहीं बढ़कर यह छायादार, रंगबिरंगी कुछ ही घंटोंकी दुनिया उनपर डाल देती है। वे भी वैसी ही दुनियामें विचरण करना प्रारम्भ कर देते हैं। आखिर ऐसा क्यों ? इसके सैद्धान्तिक कारणकी हमें खोज करनी चाहिये।

''आज दुनियामें केवल तीन बातोंका संघर्ष हो रहा है— **रूप, रुपया और प्रभुत्व। मानो ये तीन ही समस्याएँ दुनियामें सब राष्ट्रोंके समक्ष हैं।** कहना न होगा कि इस दौड़में भारत **अभी पीछे है, न मालूम किनके पुण्यकार्योंके** कारण। परंतु उसका हिस्सा भी इस दौड़में अवश्य है। भारत प्रारम्भसे ही अध्यात्मवादी देश रहा है। उसने रोटी और सेक्सकी समस्याको बादमें, और धर्म तथा संस्कृतिको पहले स्वीकार किया है। भारतवासी प्रकृति अथवा मायावी शक्तिके भी ऊपर जो एक अखण्ड ब्रह्मकी शक्ति है, उसमें विश्वास करनेवाले प्राणी हैं। आज भारतमें भी उसी मायाका प्रभाव सब स्थानोंमें परिलक्षित है।

''तात्पर्य यह है कि यदि सारी दुनियामें यथार्थवादी सिद्धान्तों-की आपसमें होड़-सी लगी है तो भारतमें आदर्शवाद और यथार्थ

पसंद करने लगी हैं ।××××बाजारोंमें किसी भी फैंसी कपड़ेकी दूकानपर पूछनेपर ज्ञात होगा कि सिने-सितारोंके नामपर वस्त्रोंका निर्माण होने लगा है । कुछ नये प्रकारके कपड़े निकल पड़े हैं । 'मधुबाला' ढाई-तीन रुपये, 'नरगिस' तीन रुपये, 'सुरैया' ढाई रुपये और डेढ़ रुपये प्रतिगज तक मिलती है । 'मधुबाला' साड़ी सितारे-टकी बंगलोरकी साड़ीका नाम है ! 'नरगिस' साड़ी सादी मैसूरकी बनी होती है, जिसके किनारेपर सुनहली कढ़ाईका काम होता है । 'सुरैया' साड़ी काली लिलनकी जिसपर लंबी, लाल-पीली-हरी धारियाँ होती हैं ।

एक पंजाबी वस्त्रविक्रेताने बताया कि सिने-सितारोंके नामपर कपड़े बहुत जल्दी बिकते हैं । 'आवारा' और 'बरसात'के नामसे भी कपड़े बिक रहे हैं । इस प्रकार फिल्मी सितारे आजकल फिल्म ही नहीं, कपड़ा भी बेचने लगे हैं । अनजाने ही ये सितारे हमारे सामाजिक जीवनके भाग्यका भी क्रय-विक्रय कर रहे हैं !

फिल्म-उद्योग, जिसे हमारे राष्ट्रनायक देशके सांस्कृतिक जीवन-का शृङ्गार बनाना चाहते हैं, हमारी रुचियोंमें किस प्रकारकी अराजकता उत्पन्न कर रहा है—इसका कुछ आभास उपर्युक्त वर्णनसे मिल सकता है । यदि यही स्थिति बनी रही तो भविष्यकी उच्छृङ्खलता और समाजविरोधी अराजकताका भी पूर्ण आभास हमें मिल जायगा । आखिर यह कुरुचिपूर्ण फैशनपरस्ती हमारे तरुण-तरुणियोंको अब किधर ले जायगी ?

इससे सिनेमाके प्रभावकी गहराईका पता लगता है । और

यह भी पता लगता है कि हमारी मनोवृत्ति किस प्रकारसे बिगड़ती जा रही है। मनुष्यकी मनोवृत्ति बदल जानेपर जब उसकी बुद्धि बुरेको भला मान लेती है, तब बुराईके छूटनेमें बड़ी ही कठिनता होती है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। कुछ ही समय पहले हमारे सम्भ्रान्त कुलकी कन्या अपना स्वरूप, सौन्दर्य दिखलाना महापाप मानती थी। उसके सौन्दर्यका प्रकाशन उसके शीलका अपमान था और वह उसके लिये असह्य था! पर आज उन्हीं आर्यकन्याओं-के हृदयोंमें अपने सौन्दर्यका सचित्र विज्ञापन करनेकी कुत्सित लालसा जाग उठी है। (अब तो दुर्भाग्यवश भारतवर्षमें सौन्दर्य-प्रतियोगिता भी प्रारम्भ हो गयी है और हमारी कुल-ललनाएँ पर-पुरुषोंके द्वारा सौन्दर्यकी परीक्षा कराकर उसमें नंबर प्राप्त करती हैं !) और आज वे ही सिनेमा-स्टूडियो आदिमें पर-पुरुषोंके (जिनमें शायद ही कोई इन्द्रियविजयी शुकदेव हों) साथ मिलने-जुलने तथा तरह-तरहकी भावभंगियाँ दिखलाकर अपने शीलका उपहास करनेमें गौरव मानने लगी हैं ! उन माता-पिताओंको गहराईसे सोचना चाहिये कि जो स्वार्थ, लोभ या नासमझीके कारण अपनी कुल-कन्याओंको सिनेमा-अभिनेत्री बनने भेजकर कितना बड़ा पाप कर रहे हैं। और उन माता-पिताओंकी नासमझीपर भी तरस आता है, जो छोटे-छोटे कोमलमति निर्दोष बालक-बालिकाओंको सिनेमा दिखलाने ले जाते हैं और उनमें सिनेमाकी विषभरी शौक पैदा करके उनके जीवनको बिगाड़नेमें कारण बनते हैं। अपने प्यारे बच्चोंको हँसते-हँसते इस दारुण विनाशके गंदे अग्निकुण्डमें झोंकनेवाले इन माता-पिताओंको क्या कहा जाय ?

यह ठीक है कि हमारे इतने लिखनेसे न तो सिनेमा-संर कोई खास असर होगा, न सरकारके ही कानपर जूँ रेंगेगी त इससे 'मनोरञ्जन' माननेवाले शौकीन नर-नारी ही अपना पलटेंगे, तथापि हमारे पाठक-पाठिकाओंको 'कल्याण' परि के सदस्य मानकर हम उनसे बार-बार इतनी प्रार्थना तो अ करेंगे कि वे जहाँतक बने '**सिनेमा देखना बिल्कुल छोड़ दें।** **हमें आशा है कि बहुत-से पाठक-पाठिका हमारी प्रार्थनापर ध्य भी देंगे।'**

साथ ही हमारी सेंसर बोर्डसे प्रार्थना है कि जहाँतक उन फिल्मोंको तो वह कदापि स्वीकृत न करें, जिनमें नैतिक प करानेवाले दृश्य, गायन और वार्तालाप हों, जिनमें नटियोंके द्व किये गये अङ्गसंचालनके गंदे दृश्य हों और जिनमें किसीकी धार्मिक भावनापर आघात करनेवाली चीजें हों!

सिनेमापर बड़े-बड़े लोग क्या कहते हैं?

आचार्य श्रीविनोबाजी भावे महोदय

(१)

××××फिल्म-निर्माताओंपर प्रतिबन्ध लगाये जाने चाहिये। जिससे कि वे ऐसे फिल्म न बनायें जो समाज और जनताके दिमागको गंदा करते हैं तथा स्वस्थ-साहित्यकी माँग कम कर देते हैं।

यदि हम अपने नौजवानोंको सही रास्तेपर बढ़ने देना और उन्हें स्वस्थ नैतिक चरित्रसे पूर्ण वीर पुरुष बनाना चाहते हैं तो हमें ऐसे साधनोंको खोजना होगा, जो उन्हें मनोरञ्जनके साथ-ही-साथ समुचित शिक्षा भी प्रदान करते हैं।

सभी सच्चे साहित्यिक 'सिनेमाके बढ़ते हुए खतरे' से चिन्तित हैं। पुराने जमानेमें लोग दिनभरके काम-काजके बाद भजन-कीर्तनमें भाग लेते थे और भगवान्के नामका स्मरण करते हुए सोते थे और कोई आश्चर्य नहीं कि वे भले विचारोंके होते थे, सिनेमाका प्रभाव इसके बिल्कुल विपरीत है!

(२)

××××स्वराज्य-प्राप्तिके बाद अगर हम अपने चारित्र्यमें शिथिलता आने देंगे तो उसको कमाये हुए स्वराज्यको खोनेकी क्रियाका आरम्भ समझना होगा।

× × × ×

मुझे ऐसा मालूम हुआ है कि करीब बीस लाख लोग हर

शाम सिनेमा देखते हैं । मुझे पता नहीं कि यह
कैसे लगाया गया है ? लेकिन अगर यह सही है कि बीस
लोग हर रोज सिनेमा देखते हैं तो यह स्पष्ट है कि हिंदुस्
तरुणोंकी मनोवृत्तिपर उसका देशव्यापी परिणाम होता है।
हिसाब लगाया कि मैं एक सालसे घूम रहा हूँ । रोजाना दो व्याख्
देता था । इसके अलावा चर्चाएँ भी होती थीं । तो भी शायद
बीस लाख लोगोंके कानोंपर मेरा संदेश पहुँच पाया हो ।
जितना प्रचार मेरे इतने परिश्रमसे एक सालमें हुआ, उतना
हर रोज शामको इस प्रकार होता रहता है, तो वह कोई मामूली
नहीं है । इस बातपर ध्यान देना जरूरी हो जाता है ।

× × × ×

चर्चामें मैंने सुना कि सिनेमा-नियन्त्रणके खिलाफ यह वि
पेश किया जाता है कि 'उससे हमारे विचार-प्रकाशनके स्वातन्त्र्य
आक्रमण होता है । हमारे संविधानमें विचार-स्वातन्त्र्यको
नागरिकका मौलिक अधिकार समझा गया है । उस अधिकार
सिनेमा-नियन्त्रणसे आक्रमण होता है'—ऐसा कहा जाता है ।

यह सोचनेका ढंग बिलकुल गलत है । विचार-प्रकाशन
स्वातन्त्र्यपर आक्रमण तो तब माना जायगा कि जब एक विचार-पंथोंवा
लोग दूसरे विचार-पंथोंवालोंके विचारोंको दबायें । लेकिन सर्वसामान्
नीतिमत्ता, शील-संवर्धन और तरुणोंके पुरुषार्थके हितमें यदि सोच
जाय तो इसको स्वातन्त्र्यमें बाधा पहुँचानेवाला मानना गलत होगा ।
ऐसी मान्यता विचार-प्रकाशनके स्वातन्त्र्यको ही न समझनेके बराबर है ।

यदि कोई आदमी खुले आम हिंसा, व्यभिचार, शराबखोरीका प्रचार करना चाहे तो क्या हम उसपर डाले हुए नियन्त्रणको विचार-प्रकाशनके स्वातन्त्र्यपर आक्रमण मानेंगे ? और इसमें कोई विशेष सम्प्रदायके विशिष्ट विचारोंको दबानेकी भी बात नहीं है ।

× × × ×

अगर हम ऐसे नियमनोंको नहीं मानेंगे तो हमारी आजादी बर्बादीका पर्यायवाची शब्द बन जायगी ।

× × × ×

इस विषयमें स्वैरवृत्तिसे नहीं चलेगा । सिनेमाका नियमन सर्व-सामान्य चरित्रकी दृष्टिसे, सदाभिरुचिकी दृष्टिसे तथा भारतीय संस्कृतिकी दृष्टिसे करना चाहिये । हमारे नियमनकी यह तीन कसौटियाँ होंगी । अगर हम इन कसौटियोंको मान्य रखते हैं और अपने सिनेमाओंका उचित नियमन करते हैं तो इसमें देशका हित है । नहीं तो, यह समझ लीजिये कि **देशकी रक्षा करना मुश्किल हो जायगा । मैं तो मानता हूँ कि उत्तम सेनासे भी अधिक जरूरत दिमागको बहकने न देनेकी तथा उसे शुद्धिके रास्तेपर चलानेकी है ।** अगर हम देशकी इस प्रकार रक्षा नहीं करेंगे तो हमारी सेनामें भी पुरुषार्थ नहीं रहेगा । जनरल करिअप्पाने इस बातपर कहा है, वह उनकी क्षात्र-वृत्तिके अनुरूप ही है । सिनेमा-नियमनमें ढीलापन करना तो अपनी सरकारके लिये भी योग्य नहीं है । हमारी सरकार तो लोक-कल्याणके लिये बनी है । इसलिये लोक-कल्याणका ध्यान रखते हुए सज्जनोंकी रायको प्रमाण समझकर नियमनका जल्दी-से-जल्दी इन्तजाम करना उसका कर्तव्य हो जाता है ।

--

मद्रासके वयोज्ञान-वृद्ध मुख्य मन्त्री श्रीचक्रवर्ती राजगोपालाचारी महोदय

(१) मजदूरोंके एक समारोहमें आपने कहा था—सिनेमा नेर्माता लोग गरीबोंकी कठिन कमाईका शोषण कर रहे हैं औ जनताके चरित्रको भ्रष्ट कर रहे हैं। ××× वे मनुष्यकी कमजोरियोंको जानते हैं और गंदे चित्र निर्माण कर लोगोंकी नीच प्रवृत्तियोंको उत्तेजित कर उन्हें दुर्भाग्यकी ओर प्रेरित करते हैं। यदि श्रमजीवी लोग बार-बार सिनेमा-गृहोंमें नहीं जायँगे तो वे अपना समय परिवार-को सुखी बनानेमें लगा सकेंगे।

(२) छात्रोंको सिनेमा देखनेसे विरत करनेका प्रयास करते हुए आपने कहा—सिनेमा न देखकर आपलोगोंको अपने घरोंपर रहना अथवा अन्य कोई कार्य करना चाहिये। मैं सिनेमा-व्यवसायका विरोधी होनेके कारण ऐसी बातें नहीं कह रहा हूँ, बल्कि इसलिये कि आजकलके सिनेमा-चित्र आपके दिमागको सड़ा डालते हैं। इसके कारण आपलोग सदैव इस प्रकारकी बातें सोचने लगते हैं। जो आपको नहीं सोचनी चाहिये। इससे आपका न केवल नैतिक और आत्मिक पतन होगा, प्रत्युत बौद्धिक अवनति भी अवश्यम्भावी है!

उत्तरप्रदेशके महामहिम राज्यपाल श्रीकन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी महोदय

××"प्लेटोने कहा है कि मनुष्य सुन्दर वस्तुओंसे सुन्दर विचारोंकी ओर और सुन्दर विचारोंसे सुन्दर जीवनकी ओर अग्रसर होता है और सुन्दर जीवनसे सर्वनिरपेक्ष परम सौन्दर्यकी ओर बढ़ता है; किंतु हालीउडकी कुत्सित परम्परा-के अनुकरणमें बनायी गयी ऐसी वाहियात फिल्में हमें कुत्सित वस्तुओंसे घृण्य विचारोंकी ओर, घृण्य विचारोंसे गर्हित जीवनकी ओर ले जाती हैं। फिर हम गर्हित जीवनसे चरम कुरूपता और बीभत्सताकी ओर बढ़ने लगते हैं। जो स्त्री-पुरुष इस प्रकारके अनैतिक चित्रोंके निर्माणमें योग देते हैं—उनमेंसे अनेक अपने निजी जीवनमें सभ्य और सुसंस्कृत व्यक्ति होते हैं—क्या उन्होंने कभी यह सोचा है कि वे जनताके सामने और खासकर युवक और युवतियोंके सामने कैसा गंदा चित्र पेश कर रहे हैं? और ऐसा वे क्यों करते हैं? इसका केवल एक ही उत्तर है—मनुष्यकी गंदी-से-गंदी प्रवृत्तियोंको उभाड़कर पैसा कमानेके लिये!

स्टेशनपर कामिनीकौशल (सिनेमाकी एक नटी) की जयके नारे लगाकर विद्यार्थियोंने जिस शिक्षा और नैतिक स्तरका परिचय दिया है क्या वही आजकलके शिक्षाका उद्देश्य है ? यदि हाँ, तो मैं समस्त विश्वविद्यालयों और कालिजोंका सदैवके लिये बंद किया जाना ही श्रेयस्कर समझूँगा। क्या हम 'कामिनीकौशलकी जय' बोलनेके लिये ही उन्हें तैयार कर रहे हैं ? एक दिन मैंने नैनीतालमें देखा कि विद्यार्थियोंकी बड़ी भीड़ चली जा रही है। पूछनेपर मालूम हुआ कि किसी सिनेमागृहमें एक प्रसिद्ध एक्ट्रेस आयी हुई थी। आजकलके विद्यार्थियोंको फिल्मी अभिनेताओंके जीवनकी प्रत्येक बात मालूम है, परंतु अपने देशके इतिहास और अपने नेताओंके सम्बन्धमें उनका ज्ञान एकदम शून्य पड़ा है !
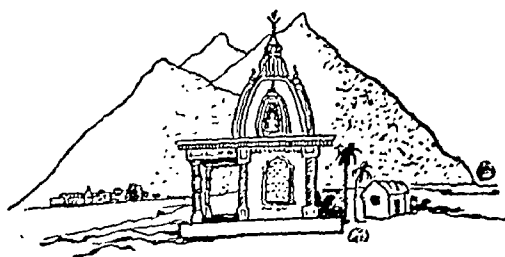
'सिनेमा-सम्बन्धी आपके इस लेखकी प्रत्येक पंक्तिसे मैं सहमत हूँ।'

(दीवानबहादुर) श्रीकृष्णलाल एम्. झवेरी एम्. ए., एल्-एल्. बी., जे. पी.

वाइस-चैन्सलर—'भारतीय महिला विश्वविद्यालय' बम्बई

श्रीहरिः

कल्याणकारी आचरण

[जीवनमें पालन करने योग्य]

हनुमानप्रसाद पोद्दार

स० पूज्य माताजीकी यादगारी प्रभुदयाल कन्हैयालाल
एवं बान्धव महुआडांड (पलामू)

श्रीहरिः

कल्याणकारी आचरण

[जीवनमें पालन करने योग्य]

हनुमानप्रसाद पोद्दार

परिचय

मेरे प्रति सद्भाव, स्नेह और प्रीति रखनेवाले बहुत-से पुरुष और देवियाँ बार-बार पूछा करते हैं कि 'मेरा आध्यात्मिक सिद्धान्त तथा किस विषयमें क्या विचार है, मैं लोगोंको कैसे विचार तथा आचरणवाले देखना चाहता हूँ। यह स्पष्टरूपसे अलग-अलग बतला दूँ।' यद्यपि मेरे सिद्धान्त या विचार जरा भी नवीन न होकर शास्त्रीय ही हैं, अतएव 'मेरे' सिद्धान्त-विचारके रूपमें कुछ भी कहनेकी आवश्यकता नहीं; तथापि सबके स्नेहाग्रहको देखकर मैं यहाँ अपने माने हुए आदर्श प्रिय सिद्धान्त, विचार, आचार, कर्तव्य, वर्ताव, व्यवहार आदि बहुत-से विषयोंपर लिख रहा हूँ। इनमें कई बातें ऐसी होंगी, जिनको रुचि तथा विचार-भेदसे या परिस्थितिवश सब नहीं मान सकते। कुछके सम्बन्धमें विरोधी विचार भी हो सकते हैं, कुछको वर्तमान समयके अनुकूल भी नहीं समझा जा सकता और कुछ बातोंमें अपने विचारानुसार दोष तथा आचरण करनेपर हानि भी प्रतीत हो सकती है। पर मैं इसलिये लिख भी नहीं रहा हूँ कि इनको अक्षरशः स्वीकार कर लिया जाय या इन्हें माननेके लिये कोई बाध्य हों। मैं अपने स्नेही सज्जनोंके अनुरोधपर अपने मनके आदर्श सिद्धान्त–विचार लिख रहा हूँ। मानने, आंशिक मानने, सर्वथा न माननेमें सभी स्वतन्त्र हैं। हाँ, मेरी समझसे इसमें लिखी सभी बातें शास्त्रानुमोदित और कल्याणकारिणी होंगी तथा उनके मानने एवं आचरणमें लानेपर भारतीय संस्कृति तथा धर्मके रक्षण एवं क्रियात्मक प्रचारके साथ ही उनको न्यूनाधिकरूपमें लौकिक, पारलौकिक और पारमार्थिक लाभ भी निश्चय ही होगा।

विनीत—हनुमानप्रसाद पोद्दार

१०—संसारके भोगमात्र अनित्य, अपूर्ण तथा सुखरहित, दुःखालय और दुःखोंके उत्पत्ति-स्थान हैं—ऐसा समझकर उनमें आसक्ति न रक्खे ।

११—अपनी संस्कृति, पूर्वज, शास्त्र, पवित्र स्थान, संस्कृत भाषा आदिपर श्रद्धा हो और इसमें गौरवका अनुभव करे ।

१२—कर्मफलभोगका सिद्धान्त सर्वथा सत्य है । अच्छे-बुरे कर्मका फल इस लोक या परलोकमें भोगना ही पड़ता है । कर्मानुसार स्वर्ग, नरक, देवयोनि, मनुष्ययोनि, पितृयोनि, प्रेतयोनि, कूकर-शूकरादि आसुरी योनियोंमें तथा लोकोंमें जाना पड़ता है—यह सब सर्वथा सत्य है । बीज-फल न्यायसे लघुकर्मके लंबे फल होते हैं और शास्त्रीय प्रायश्चित्तसे कर्म कटते भी हैं । देवाराधन, ईश्वराराधनसे नवीन प्रारब्धका निर्माण भी होता है ।

१३—वर्तमान निषिद्ध कर्म करनेवाला पूर्व-प्रारब्धानुसार सुखी देखा जा सकता है । वर्तमान कर्मका फल उसे भविष्यमें मिलेगा । इसी प्रकार वर्तमानमें सत्कर्म करनेवाला पिछले पापोंके प्रारब्धवश दुखी देखा जा सकता है । इस सत्कर्मका फल उसे आगे मिलेगा । पर यह निश्चित है कि बुरे कर्मका अच्छा फल और अच्छे कर्मका बुरा फल नहीं हो सकता ।

१४—तत्त्वज्ञान तथा भगवच्छरणागतिसे समस्त कर्मराशि भस्म हो जाती है ।

मनके कार्य—

१—कभी किसीका बुरा न चाहे, बुरा होता देखकर प्रसन्न न हो।

२—व्यर्थ-चिन्तन, दूसरेका अनिष्ट-चिन्तन, काम-क्रोध-लोभ आदिके निमित्तसे चिन्तन न करे।

३—किसीकी कभी हिंसा न करे।

४—भगवान्‌की कृपापर विश्वास रक्खे। भगवान्‌का चिन्तन करे। उनके लीला, नाम, गुण, तत्त्वका चिन्तन करे। संतोंके चरित्रोंका, उनके उपदेशोंका चिन्तन करे।

५—विषयोंका चिंतन न करके भगवान्‌का चिन्तन करे।

६—पुरुष स्त्री-चिन्तन और स्त्री पुरुष-चिन्तन न करे।

७—नास्तिक, अधर्मी, अनाचारी, अत्याचारी तथा उनकी क्रियाओंका चिन्तन न करे।

वाणीके कार्य—

१—किसीकी निन्दा-चुगली न करे। यथासाध्य परचर्चा करे ही नहीं। किसीकी भी व्यर्थ आलोचना न करे।

२—झूठ न बोले।

३—कटु शब्द, अपशब्द न बोले। किसीका अपमान न करे। किसीको शाप न दे। अश्लील शब्दका उच्चारण न करे।

४—नम्रतायुक्त मधुर वचन बोले।

५—हितकारक वचन बोले। किसीका अहित न करे।

६—व्यर्थ न बोले। अभिमानके वाक्य न बोले।

७—भगवद्गुण-कथन, शास्त्रपठन, नामकीर्तन, नामजप करे। पवित्र पद-गान करे।

८—अपनी प्रशंसा कभी न करे।

९—जिसमें गौ-ब्राह्मणकी, गरीबकी या किसीके भी हितकी हानि होती हो, ऐसी बात न बोले।

१०—आवश्यकता होनेपर दूसरोंकी सच्ची प्रशंसा भले ही करे। किसीकी भी व्यर्थ खुशामद न करे।

११—गंभीर विषयोंपर विचारके समय विनोद न करे। ऐसा हँसीमजाक न करे, जो दूसरोंको बुरा लगे या जिससे किसीका अहित होता हो। व्यर्थ हँसीमजाक तो करे ही नहीं। हँसीमजाकमें भी अश्लील शब्दका प्रयोग न करे।

दान—

१—कुछ-न-कुछ प्रतिदिन दान करे।

२—जिसको, जहाँ, जब, जिस वस्तुकी आवश्यकता उसको, वहाँ, उस समय, वह वस्तु, अपने पास हो तो, दे दे।

३—दान सम्मानपूर्वक करे, अवज्ञापूर्वक नहीं।

४—भगवान्‌की वस्तु भगवान्‌की सेवामें लगी, यह सम न अभिमान करे, न दान लेनेवालेपर अहसान करे, न उस लोक-परलोकमें फल चाहे, न बदला चाहे।

५—दान यदि गुप्तरूपसे हो तो सर्वोत्तम है।

६—तीर्थमें, पर्वके समय, पुण्य तिथियोंपर, माता-पितादि श्राद्धके दिन भी दान करे।

७—धन, जमीन, अन्न, वस्त्र, जल, दवा, सत्परामर्श, आश्र अभय, मधुर वचन, मार्ग-दर्शन—जिसके पास जो हो, जित परिमाणमें हो—वह उतने ही परिमाणमें आवश्यकतानुसार नम्र तथा सम्मानके साथ दान करे।

भोजन--

१--सादा, सात्त्विक, सहजमें पचनेवाला करे, कम करे; भूखसे ज्यादा कभी न खाये। अच्छी तरह चबाकर खाय।

२--प्याज, लहसुन तथा उत्तेजक तामस वस्तु न खाय। मसाला कम-से-कम खाये। नशीली चीज न खाये-पीये।

३--किसीकी जूठन कभी न खाये-पीये।

४--भोजन स्वास्थ्य-रक्षा तथा पवित्र मनके निर्माणके लिये करे, स्वादके लिये नहीं।

शिक्षा—

१—शिक्षामें धर्म, सदाचार, मानवधर्म, नीति, संयम
हितभावकी शिक्षा अवश्य रहे ।

२—लड़के-लड़कियोंको एक साथ न पढ़ाया जाय । सह-
हो । ऐसे शिक्षालयोंमें बच्चोंको न भेजे ।

३—जहाँ केवल विदेशी भावोंकी शिक्षा एवं आचार ि
ो हों, उनमें बच्चोंको न भेजे ।

४—बच्चे माता-पिताको नित्य प्रणाम करें; उन्हें मात
ाजी, पिताजी, बाबूजी आदि कहें; 'मम्मी', 'डैडी', '
ि न कहें ।

५—आजकलके दूर-दूरके छात्राश्रमोंमें बच्चोंको भेजना ब
हानिकर है । वहाँ अधिकांशमें अनीति, उच्छृङ्खलता, असदाच
नास्तिकता, खान-पान, विवाह आदिमें किसी विधि-निषेधको
मानने, गुरुजनोंका अनादर करने तथा यथेच्छाचारी बननेकी
शिक्षा मिलती है ।

अर्थकी शुद्धि—

१—चोरी-ठगी न करे। व्यापारमें, नौकरी, दलाली, अफसरी, जदूरी आदि सभीमें सचाई तथा ईमानदारीका सदा ध्यान रक्खे।

२—वस्तुओंमें मिलावट न करे। तौलमें कम न दे, धिक न ले।

३—दूसरेका हक न ले। पराये धनको विषके समान समझे।

४—सत्य-न्यायसे शुद्ध कमाई करे।

५—कमाई अधिक हो तो उसे मौज-शौकमें, विवाह आदिके अवसरोंपर आडम्बरमें, सैर-सपाटेमें तथा व्यर्थकी सजावट-बनावटमें न खर्च करके गरीबोंकी सेवामें लगावे। उसे गरीबोंकी सम्पत्ति समझे।

६—पैसेका लोभ कभी न करे।

७—संग्रहकी अपेक्षा त्यागको अधिक महत्त्व दे।

८—अपने जिम्मेका काम जिम्मेवारी, सचाई, बुद्धिमानीके साथ पूरा समय देकर सम्पादन करे।

९—जिसमें हिंसा होती हो, ऐसी किसी वस्तुका, चमड़ा, खानेकी चीज, मांस-मेद, हड्डी-मज्जा आदिका तथा शराब आदिका व्यापार कभी न करे।

४—पत्नीके साथ कभी रूखा, कटु व्यवहार मन-तन
न करे।

५—पत्नीको कभी न मारे। यह महापाप है।

६—पत्नीको प्रेमभरे शब्दमें सत्-शिक्षा देता रहे। अप
सदाचरण तथा सद्व्यवहारसे उसे संतुष्ट तथा सदाचारपरायण

७—गंदी पुस्तकें न स्वयं पढ़े। पत्नी पढ़ती हो त
समझाकर रोक दे।

[illegible]यं फैशनसे दूर रहकर पत्नीको फैशनमें न ज
मधुरत[illegible]र्वक समझाकर।

९—परस्त्रियोंके पास न जाय। डांस न करे। पत्नीव
समझाकर उसे परपुरुषोंके साथ डांस न करने दे।

१०—जहाँ अश्लील, असदाचार तथा भ्रष्ट खान-पान
हो—ऐसे स्थानोंमें न स्वयं जाय, न पत्नीको जाने दे, न
साथ जायँ।

११—पत्नीके माता-पिता-भाई आदिकी निन्दा न करे।

१२—पत्नी बीमार हो तो उसकी अपने हाथों सब तरह
सेवा भलीभाँति करे।

[पत्नी]

१—पत्नी पतिको ही परमेश्वर, परम गुरु तथा परम पूजनीय मझकर उसकी तन-मन-धनसे—सच्चे हृदयसे हर तरहकी वा करे।

२—किसी पर-पुरुषको गुरु न बनाये। किसी पर-पुरुषका र्श न करे।

३—किसी पर-पुरुषसे एकान्तमें न मिले।

४—पतिके साथ सदा नम्रताका, विनयभरा, मधुर बर्ताव करे। भी रूखे-कड़े शब्दोंका प्रयोग न करे। पतिका कभी [illegible]मान करे।

५—पतिकी उचित सेवाके लिये पहलेसे तैयारी रक्खे, [illegible]ससे उनको प्रतीक्षा न करनी पड़े। पतिकी सेवामें अपना सौभाग्य समझे।

६—पतिसे कभी छल-कपटका व्यवहार न करे।

७—घरकी स्थितिसे विरुद्ध पतिसे माँग न करे।

८—पतिके माता-पिता-भाई आदिकी बुराई न करे।

९—पर-पुरुषोंके साथ डांस न करे। मर्यादानाशक स्थानोंमें न जाय।

१०—सिनेमा आदिमें न जाय तथा पतिको भी समझाकर न जाने दे।

११—कृत्रिम उपायोंसे गर्भनिरोध न करे। गर्भपात न करावे।

१२—गंदा साहित्य न पढ़े। गंदे चित्र न देखे।

द्रक तथा प्रकाशक

मोतीलाल जालान

गीताप्रेस, गोरखपुर

० १९८२ से २०१७ तक ३,३०,०००

२०१९ तीसवाँ संस्करण ३०,०००

२०२१ इकतीसवाँ संस्करण ३०,०००

कुल ३,९०,०००

तीन लाख नब्बे हजार

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ।

(अथर्ववेद)

ब्रह्मचर्य और तपसे देवताओंने मृत्युको जीत लिया ।

जिस देशमें प्रत्येक बालकके लिये ब्रह्मचर्य अनिवार्य था, जिस जातिकी समुन्नतिके चार नियमित आश्रमोंमें ब्रह्मचर्य सबसे पहला आश्रम था, बड़े खेदका विषय है कि उसी देश और उसी ब्रह्मचारियोंकी जातिमें आज ब्रह्मचर्यका अभाव हो गया है । जिस देशके शिशु सिंहोंके साथ खेलते थे, जिस देशके शिशुओंके पदाघातसे पहाड़की चट्टानें चकनाचूर हो जाती थीं, वहीं वीर्य-प्रधान देश आज निर्वीर्य और सत्त्वहीन हो गया है । आज देशके लाखों बालक ब्रह्मचर्यके आचरणसे भ्रष्ट होकर युवावस्था आनेके पूर्व ही अपक्व वीर्यका नाश कर सदाके लिये बुद्धि, बल, तेज और उत्साहसे हाथ धो बैठते हैं । लाखों युवक नाना प्रकारकी दुर्व्याधियों-से पीड़ित हैं और लाखों अपने माता-पिता और निराधार युवती पत्नीको रुलाकर मृत्युके अधीन हो रहे हैं । संयम, नियम, साधन, सुख और मनुष्यत्वका तो भीषण ह्रास हो रहा है । इस दुर्दशाग्रस्त देशकी रक्षा ब्रह्मचर्यकी पुनः प्रतिष्ठासे ही हो सकती है । इसीलि

इस विषयपर शास्त्र, सत्पुरुषोंके वाक्य और अपने अनुभवके आधार-पर कुछ लिखनेका विचार किया गया है।

हमारे जीवनका लक्ष्य और उसका साधन

प्राचीन ऋषि-मुनियोंने सुखके अन्वेषणमें प्रयत्न करते हुए बड़े अनुभवसे यह सिद्धान्त निश्चित किया कि नित्यसुखकी प्राप्ति केवल एक परमात्माको प्राप्त कर लेनेमें है, यही मनुष्य-जीवनका चरम लक्ष्य है, जबतक मनुष्य जगत्‌की सारी अनेकतामें एक व्यापक विभुको उपलब्ध नहीं करता तबतक उनके दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं होती। अतएव मनुष्यको चाहिये कि वह उस एक नित्य शुद्ध, बुद्ध, सच्चिदानन्दको प्राप्त करे और इसीलिये जीवको भगवत्कृपासे यह देवदुर्लभ मानव-देह प्राप्त हुई है। परन्तु उसकी सुगमतापूर्वक प्राप्ति कैसे हो, इसीलिये मनीषियोंने चार आश्रमोंका विधान किया और उनमें ऐसा क्रम रक्खा कि जिससे संसारक्षेत्रमें भी किसी प्रकारकी बाधा न आवे और मनुष्य क्रमशः मुक्तिकी ओर भी दृढ़ताके साथ अग्रसर होता जाय। आरम्भसे ही ऐसी व्यवस्था की गयी कि जिसमें प्रत्येक आर्य-बालकके हृदयमें ब्रह्मप्राप्तिका लक्ष्य स्थिर हो जाय और संयम-नियमपूर्वक रहकर वह उसीके उपयोगी सर्व प्रकारकी शिक्षा प्राप्त कर सके। इसीलिये पहले आश्रमका नाम हुआ 'ब्रह्मचर्य'। जब इस आश्रमकी सारी क्रियाओंको पूर्ण कर वह तेजस्वी युवक ब्रह्मचर्यकी कठिन परीक्षामें उत्तीर्ण हो जाता था, तब उसे दूसरे महान् दायित्वपूर्ण आश्रम 'गृहस्थ' में प्रवेश करनेका अधिकार प्राप्त होता था और वहाँ भी उसे ब्रह्मकी प्राप्तिके लक्ष्यको सदा ध्यानमें रखते हुए विशाल-हृदय होकर अपनी प्रत्येक धर्मा-

नुमोदित क्रिया उसी ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये भगवदर्पण-बुद्धिसे सम्पन्न करनी पड़ती थी। जब वह गृहस्थके सारे कामोंको कर चुकता तब उसे तीसरे आश्रम 'वानप्रस्थ' में प्रवेश करना पड़ता और वहाँ सम्यक् प्रकारसे त्यागकी तैयारी की जाती और जब पूरी तैयारी हो चुकती तब चतुर्थाश्रम 'संन्यास' की दीक्षा ग्रहणकर मनुष्य देहाभिमान-सहित बाह्य वस्तुओंका भी सर्वथा परित्याग कर परमात्मामें लीन हो जाता। सौ वर्षकी आयुके हिसाबसे यह नियम था कि पहले चौवीस सालतक मनुष्य ब्रह्मचर्यका पालन करे, पचीससे पचासतक गृहस्थ-में रहे, पचास पूरे होते ही दम्पति अरण्यवासी होकर वानप्रस्थाश्रम-का सेवन करे और पचहत्तरवें वर्षसे जीवनके शेष मुहूर्ततक संन्यासाश्रममें रहे। लोग कह सकते हैं कि 'यह व्यवस्था तो सौ वर्षकी आयुके कालमें थी, इस समय यह क्योंकर हो सकती है ?' परन्तु वे भूलते हैं। यदि शास्त्रके व्यवस्थानुसार मनुष्य चौबीस सालतक अखण्ड ब्रह्मचर्यका सेवन करे तो अब भी सौ वर्षकी आयुका प्राप्त होना कोई बड़ी बात नहीं है। आयु घटनेका कारण तो ब्रह्मचर्यका नाश ही है। जब देशमें ब्रह्मचर्यका पूर्ण प्रचार था, तब यहाँ न तो इतनी व्याधियाँ थीं और न युवावस्थामें प्रायः कोई मरता ही था। परन्तु आजकी दशा उससे सर्वथा विपरीत है। हमने जीवनके मूल ब्रह्मचर्यको छोड़ दिया, इसीसे हमारी ऐसी दुरवस्था हो गयी। यह स्मरण रखना चाहिये कि जबतक हमारे देशमें ब्रह्मचर्यकी पुनः प्रतिष्ठा नहीं होती, तबतक हमारा उत्थान होना बड़ा ही कठिन है। कच्ची नींवपर इमारत नहीं उठ सकती। यदि उठा दी जाती है तो वह इतनी कमजोर होती है

कि जरा-से धक्केसे ही गिर पड़ती है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्यके बिना जीवन नहीं टिक सकता; यदि कहीं कुछ रहता है तो वह दुःखसे भरा हुआ रहता है, सो भी स्वल्प कालके लिये ही। यही कारण है कि आज हमारी इतनी दुर्दशा है।

वीर्यधारण ही ब्रह्मचर्य है

शरीरमें ओजस् धातुका होना ही जीवनका कारण है। वाग्भट्ट कहते हैं—

ओजश्च तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम्।
हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थितिनिबन्धनम्॥
यस्य प्रवृद्धौ देहस्य तुष्टिपुष्टिबलोदयाः।
यन्नाशे नियतो नाशो [यस्मिंस्तिष्ठति जीवनम्॥
निष्पाद्यन्ते यतो भावा विविधा देहसंश्रयाः।
उत्साहप्रतिभाधैर्यलावण्यसुकुमारताः॥

'रससे लेकर वीर्यतक सातों धातुओंका जो तेज है उसे ओजस् कहते हैं। ओजस् प्रधानतया हृदयमें रहता है, पर वह समस्त शरीरमें व्याप्त है। ओजस्की वृद्धिसे ही तुष्टि, पुष्टि और बलकी उत्पत्ति होती है। ओजस्के नाशसे ही मृत्यु होती है। यह ओजस्-पदार्थ ही जीवनका आधार है; इसीसे उत्साह, प्रतिभा, धैर्य, लावण्य और सुकुमारताकी प्राप्ति होती है।' यह ओजस् कहाँसे आता है? महर्षि सुश्रुत कहते हैं—

रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तत् खल्वोजस्तदेव बलमिति।

'रससे शुक्रतक सातों धातुओंके परम तेज भावको ओजस्

कहते हैं, यही बल है।' यह ओजस् कैसा है और कहाँ रहता है? शार्ङ्गधरका वचन है—

ओजः सर्वशरीरस्थं स्निग्धं शीतं स्थिरं सितम्।
सोमात्मकं शरीरस्य बलपुष्टिकरं मतम्॥

'ओजस् सारे शरीरमें रहता है। यह स्निग्ध, शीतल, स्थिर, श्वेतवर्ण, सोमात्मक और शरीरके लिये बल तथा पुष्टिका देनेवाला है।'

इससे सिद्ध हो गया कि इस ओजस्की उत्पत्ति वीर्यसे होती है। अतएव वीर्य ही जीवनधारणका प्रधान उपादान है, यही जीवनका प्रधान अवलम्बन है। अब यह जानना चाहिये कि वीर्य क्या है और उसकी उत्पत्ति कैसे होती है? आयुर्वेदके अनुसार शरीरमें सप्त धातुओंका रहना आवश्यक है, ये पदार्थ मनुष्य-जीवनको धारण करते हैं, इसीसे इन्हें धातु कहते हैं।

एते सप्त स्वयं स्थित्वा देहं दधति यन्नृणाम्।
रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः॥

'रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र (वीर्य)—ये सात पदार्थ स्वयं स्थित रहकर मनुष्योंकी देहको धारण करते हैं।' इसीसे इनका नाम धातु है, मनुष्य जो कुछ भी खाता-पीता, शरीरपर लगाता या सूँघता है वह शरीरमें जाकर सबसे पहले रसकी उत्पत्ति करता है और उसीसे क्रमशः अन्य धातुएँ बनती हैं।

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जायाः शुक्रसम्भवः॥

भोजनका सबसे पहले रस बनता है; रससे रुधिर, रुधिरसे

पर-स्त्रीके साथ तो मैथुन करना सर्वथा निषिद्ध है ही, अपनी स्त्रीके साथ भी इन आठ प्रकारके मैथुनोंसे मुमुक्षु बचना चाहिये । स्त्रीके किसी प्रकारके सम्बन्धसे ही वीर्यनाश है । प्रत्यक्ष सहवासके अतिरिक्त अन्य प्रकारके मैथुनोंमें स्खलित होकर अण्डकोषोंमें आ ठहरता है, जिनसे धातुदौ स्वप्नविकार, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, यक्ष्मा आदि अनेक प्रकारकी बीमा हो जाती हैं । आजकलकी सभ्यतामें तो मैथुनके और भी अ अनैसर्गिक उपायोंका आविष्कार हुआ है, जिनसे प्रत्यक्ष सहवा सदृश ही भीषणताके साथ वीर्यनाश होता है और यह पापा उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है । फल भी हाथोंहाथ मिल रहा है मन और शरीर दुर्बल हो जाता है, गाल पिचक जाते हैं, चेह पीला पड़ जाता है, स्मरणशक्ति चली जाती है, मस्तकमें च आते हैं, हृदय कमजोर हो जाता है, आँखें जलने लगती हैं, क्षु मारी जाती है, जी घबड़ाता है, सुखसे नींद नहीं आती अ आलस्य घेरे रहता है, सारांश यह कि जीवन क्लेशोंका समुद्र ब जाता है । आयुर्वेदशास्त्रमें अर्श, पाण्डु, रक्तपित्त, राजयक्ष्मा, कास स्वरभेद, मूर्छा, दाह, अग्निमान्द्य और वात आदि रोगोंका कारण वीर्यका अधिक नाश होना ही बतलाया है । पाश्चात्य डाक्टरोंका भी यही मत है । ऐसी अवस्थामें मनन-ध्यान तो हो ही कैसे सकते हैं? अतएव प्रत्येक सुखके इच्छुक मनुष्यको चाहिये कि वह स्वयं ब्रह्मचर्यका पालन करे और अपनी सन्ततिसे करवावे । माता-पिताका कर्तव्य है कि वे गर्भाधानकालसे ही बड़ी सावधानीके साथ बालकके भावी जीवनको ब्रह्मचर्यके प्रतापसे सुखमय बनानेका उपाय करें ।

स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः ।
स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥

(मनुस्मृति २ । १७५–१८१)

'ब्रह्मचारी गुरुके घरमें रहकर अपने तपकी वृद्धिके लिये समस्त इन्द्रियोंको वशमें रखकर इन नियमोंका पालन करे । नित्य नहाकर शुद्ध होकर देव, ऋषि और पितरोंका तर्पण करे, देवताओंका यथाविधि पूजन करे, वनमेंसे यज्ञके लिये लकड़ियाँ लाकर हवन करे । शहद, मांस, चन्दन, इत्र आदि पदार्थ, फूल, मालाएँ, रस, स्त्रियाँ और सब प्रकारके आसवोंका तथा प्राणियोंकी हिंसाका सर्वथा त्याग करे । शरीरमें तेल न लगावे, आँखोंमें सुरमा न डाले, जूते न पहने, छत्ता न रक्खे; काम, क्रोध, लोभको त्याग दे, नृत्य न करे, गीत न गावे, बाजा न बजावे, जूआ न खेले, परचर्चा न करे, निन्दा न करे, झूठ न बोले, स्त्रीको न देखे, न स्पर्श करे, परायी बुराई न करे, सर्वत्र अकेला सोवे, वीर्यपात कभी न करे । जो विद्यार्थी कामनासे वीर्यपात करता है, वह अपने ब्रह्मचर्यव्रतका नाश करता है । बिना इच्छाके यदि स्वप्नमें वीर्यपात हो जाय तो सवेरे नहाकर सूर्य भगवान्का पूजन करे और 'पुनर्मामेत्विन्द्रियम्' की ऋचाका तीन बार जप करे ।' यह थी ब्रह्मचारीकी जीवनचर्या । राजकुमार और दरिद्र भिखारीके बालकमें कोई भेद नहीं था । भगवान् कृष्ण और दरिद्र सुदामाके एक साथ सान्दीपनिके घरमें रहकर विद्याध्ययन करनेकी कथा प्रसिद्ध है । अब इसके साथ वर्तमान कालके छात्रोंकी तुलना कीजिये । कहाँ तो इन्द्रियसंयमी, विनम्र, गुरुसेवक, त्यागी, विलासशून्य, पवित्रकाय-मन, धर्मज्ञाननिपुण, ईश्वरभक्त, दण्डमेखला-

कहाँ तो सब प्रकारसे इन्द्रियसंयम कर ब्रह्मप्राप्तिके लिये अरण्यवासी, त्यागी गुरुकी झोपड़ीमें रहकर सब प्रकारकी सत्-शिक्षाओंके प्राप्त करनेका स्तुत्य आदर्श और कहाँ आज बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओंमें प्रायः असंयमी भाड़ेके शिक्षकोंद्वारा विषय-प्रसविनी, जड़वादमें लगा देनेवाली शुष्क अविद्यारूपी विद्याका शिक्षण। जरा प्राचीन गुरुकुलोंमें जाकर रहनेवाले ब्रह्मचारी विद्यार्थियोंके पवित्र जीवनको देखिये !। विद्याभ्यासके योग्य होते ही बालक उपनयन-संस्कारसे संस्कृत होकर माता-पिता और घर-बारको त्यागकर अकेला समित्पाणि होकर त्यागी और विद्वान् वनवासी गुरुके गृहमें जाता है और गुरुको परमात्मा समझकर उसकी सब प्रकारसे सेवा करता हुआ ब्रह्मचर्य-आश्रमके कठिन नियमोंका पालन करता हुआ, श्रद्धा और भक्तिके साथ सद्विद्याका अध्ययन करता है। ब्रह्मचारीके लिये नियम हैं—

सेवेतेमांस्तु नियमान् ब्रह्मचारी गुरौ वसन्।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तपोवृद्ध्यर्थमात्मनः॥
नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद् देवर्षिपितृतर्पणम्।
देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च॥
वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्॥
अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम्।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम्॥
द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथानृतम्।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च॥
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्।
कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः॥

स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः ।
स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥
(मनुस्मृति २ । १७५-१८१)

'ब्रह्मचारी गुरुके घरमें रहकर अपने तपकी वृद्धिके लिये समस्त इन्द्रियोंको वशमें रखकर इन नियमोंका पालन करे। नित्य नहाकर शुद्ध होकर देव, ऋषि और पितरोंका तर्पण करे, देवताओंका यथाविधि पूजन करे, वनमेंसे यज्ञके लिये लकड़ियाँ लाकर हवन करे। शहद, मांस, चन्दन, इत्र आदि पदार्थ, फूल, मालाएँ, रस, स्त्रियाँ और सब प्रकारके आसवोंका तथा प्राणियोंकी हिंसाका सर्वथा त्याग करे। शरीरमें तेल न लगावे, आँखोंमें सुरमा न डाले, जूते न पहने, छत्ता न रक्खे; काम, क्रोध, लोभको त्याग दे, नृत्य न करे, गीत न गावे, बाजा न बजावे, जूआ न खेले, परचर्चा न करे, निन्दा न करे, झूठ न बोले, स्त्रीको न देखे, न स्पर्श करे, परायी बुराई न करे, सर्वत्र अकेला सोवे, वीर्यपात कभी न करे। जो विद्यार्थी कामनासे वीर्यपात करता है, वह अपने ब्रह्मचर्यव्रतका नाश करता है। बिना इच्छाके यदि स्वप्नमें वीर्यपात हो जाय तो सबेरे नहाकर सूर्य भगवान्‌का पूजन करे और 'पुनर्मामेत्विन्द्रियम्' की ऋचाका तीन बार जप करे।' यह थी ब्रह्मचारीकी जीवनचर्या। राजकुमार और दरिद्र भिखारीके बालकमें कोई भेद नहीं था। भगवान् कृष्ण और दरिद्र सुदामाके एक साथ सान्दीपनिके घरमें रहकर विद्याध्ययन करनेकी कथा प्रसिद्ध है। अब इसके साथ वर्तमान कालके छात्रोंकी तुलना कीजिये। कहाँ तो इन्द्रियसंयमी, विनम्र, गुरुसेवक, त्यागी, विलासशून्य, पवित्रकाय-मन, धर्मज्ञाननिपुण, ईश्वरभक्त, दण्डमेखला-

भावसे जगत्की सेवा कर और शास्त्रके मर्यादानुसार यथावश्यक समस्त व्यवहार कर देवर्षिपितृऋणसे मुक्त होते हैं। शास्त्र कहता है—

'पुत्रार्थे क्रियते भार्या'

'भार्या पुत्रोत्पादनके लिये करनी चाहिये न कि विलास-वासनाके लिये । स्त्री सहधर्मिणी है, विलासकी सामग्री नहीं। विवाह किया जाता है संयमके लिये, न कि उच्छृङ्खलताको आश्रय देनेके लिये। आज हम इस परम सत्यको भूल गये हैं, इसीलिये तो स्वर्गके नन्दनकाननके सदृश हमारा सुखमय गृहस्थ आज नरकपुरी बन रहा है। विवाहका दायित्व और उसका असली उद्देश्य हम भूल गये हैं। विवाहकी धार्मिकताको छोड़कर आज हमने उसे केवल इन्द्रिय-सुख-साधनका ही द्वार बना लिया है। शास्त्र कहता है कि चौबीस वर्षपर्यन्त गुरुगृहमें निवास करनेके उपरान्त जब युवक विद्याबलसम्पन्न होता है, जब वह अपनी जीविका स्वयं निर्वाह करने योग्य होता है, तब उसे गृहस्थाश्रमके पवित्र द्वारमें प्रवेश करनेका अधिकार प्राप्त होता है। आज हम इस महत्त्वपूर्ण व्यवस्थाको भुलाकर अबोध बालक-बालिकाओंका गुड्डे-गुड्डियोंका-सा विवाह कर उनके भावी जीवनको नष्ट कर डालते हैं। जिन बच्चोंको धोती पहननेका शऊर नहीं उन्हें हम गृहस्थाश्रमके कठिन बन्धनमें बाँधते हैं। वे बेचारे अबोध बालक इसका मर्म क्या जानें। उन्हें क्या पता कि विवाहमें पति-पत्नी आपसमें क्या प्रतिज्ञा करते हैं? बालक केवल विवाहको एक आमोद मानकर खुशीमें फूले फिरते हैं, परंतु जो बुद्धिमान् लोग ऐसे विवाहोंका परिणाम जानते हैं, उन्हें अबोध बालकोंके इस आमोद-प्रमोदपूर्ण विनोदपर रुलाई आती है। हमारे

युवकोंकी अवस्था तो देखिये ! जवानी आनेके पहले ही बुढ़ापा आ गया है । यही स्थिति स्त्रियोंकी है, शायद ही कोई ऐसी युवती हो जो प्रदर या रजोविकारके रोगसे पीड़िता न हो ! युवक और युवतियों-की मृत्यु-संख्या देखकर तो कलेजा काँपता है ! कलियाँ खिलनेके पहले ही मुर्झा जाती हैं । इससे अधिक गृहस्थकी दुर्दशा और क्या होगी ? इसमें कोई सन्देह नहीं कि माता-पिताको अपने बालक बड़े प्यारे होते हैं, वे जान-बूझकर उनका अनिष्ट नहीं करते परंतु उनकी बुद्धिमें अज्ञान छाया हुआ है, इसीलिये वे इस प्रकारकी भूलें करते हैं । ब्रह्मचर्यके महत्त्वको भूल जाना ही इस भूलका प्रधान कारण है, परंतु यह भूल सर्वथा अक्षम्य होती है, प्रकृति हाथोंहाथ फल दे देती है । अतएव माता-पिता और अभिभावकोंको चाहिये कि वे अपनी संतानका विवाह वयसे पूर्व कदापि न करें । वर्तमान परिस्थितिको देखते हुए विवाहके योग्य वर-कन्याकी आयु अन्ततः पूर्ण अठारह और बारह वर्ष नियत की जा सकती है । मर्यादामें रहते हुए आवश्यकता और योग्यतानुसार इसकी अवधि और भी बढ़ायी जाय तो उत्तम है । धर्मशास्त्रोंके अनुसार कन्याका विवाह रजोदर्शनसे पूर्व ही होना चाहिये । यद्यपि मनु महाराजने योग्य वरके अभावमें रजोदर्शनके बाद तीन वर्षतक और भी प्रतीक्षा करनेकी आज्ञा दी है और यहाँतक कहा है कि कन्या आजन्म कुँवारी रह जाय तो कोई आपत्ति नहीं, परन्तु अयोग्य वरके साथ उसका विवाह न करना चाहिये; परन्तु यह व्यवस्था योग्य वरके अभावमें है । जो लोग अपनी कन्याका किसी लोभ या प्रमादवश कन्यासे छोटी उम्रके वरके साथ या वृद्धके साथ विवाह कर देते हैं वे बड़ा पाप करते हैं । धर्मशास्त्रका वाक्य है—

भावसे जगत्की सेवा कर और शास्त्रके मर्यादानुसार यथावश्यक समस्त व्यवहार कर देवर्षिपितृऋणसे मुक्त होते हैं। शास्त्र कहता है—

'पुत्रार्थे क्रियते भार्या'

'भार्या पुत्रोत्पादनके लिये करनी चाहिये न कि विलास-वासनाके लिये । स्त्री सहधर्मिणी है, विलासकी सामग्री नहीं। विवाह किया जाता है संयमके लिये, न कि उच्छृङ्खलताको आश्रय देनेके लिये। आज हम इस परम सत्यको भूल गये हैं, इसीलिये तो स्वर्गके नन्दनकाननके सदृश हमारा सुखमय गृहस्थ आज नरकपुरी बन रहा है। विवाहका दायित्व और उसका असली उद्देश्य हम भूल गये हैं। विवाहकी धार्मिकताको छोड़कर आज हमने उसे केवल इन्द्रिय-सुख-साधनका ही द्वार बना लिया है। शास्त्र कहता है कि चौबीस वर्षपर्यन्त गुरुगृहमें निवास करनेके उपरान्त जब युवक विद्याबलसम्पन्न होता है, जब वह अपनी जीविका स्वयं निर्वाह करने योग्य होता है, तब उसे गृहस्थाश्रमके पवित्र द्वारमें प्रवेश करनेव अधिकार प्राप्त होता है । आज हम इस महत्त्वपूर्ण व्यवस्थाव भुलाकर अबोध बालक-बालिकाओंका गुड्डे-गुड्डियोंका-सा विवाह क उनके भावी जीवनको नष्ट कर डालते हैं । जिन बच्चोंको धोती पहननेका शऊर नहीं उन्हें हम गृहस्थाश्रमके कठिन बन्धनमें बाँधते हैं। वे बेचारे अबोध बालक इसका मर्म क्या जानें। उन्हें क्या पता कि विवाहमें पति-पत्नी आपसमें क्या प्रतिज्ञा करते हैं ? बालक केवल विवाहको एक आमोद मानकर खुशीमें फूले फिरते हैं, परंतु जो बुद्धिमान् लोग ऐसे विवाहोंका परिणाम जानते हैं, उन्हें अत्यंत बालकोंके इस आमोद-प्रमोदपूर्ण विनोदपर रुलाई आती है। हमारे

युवकोंकी अवस्था तो देखिये ! जवानी आनेके पहले ही बुढ़ापा आ गया है। यही स्थिति स्त्रियोंकी है, शायद ही कोई ऐसी युवती हो जो प्रदर या रजोविकारके रोगसे पीड़िता न हो ! युवक और युवतियों-की मृत्यु-संख्या देखकर तो कलेजा काँपता है ! कलियाँ खिलनेके पहले ही मुर्झा जाती हैं। इससे अधिक गृहस्थकी दुर्दशा और क्या होगी ? इसमें कोई सन्देह नहीं कि माता-पिताको अपने बालक बड़े प्यारे होते हैं, वे जान-बूझकर उनका अनिष्ट नहीं करते परंतु उनकी बुद्धिमें अज्ञान छाया हुआ है, इसीलिये वे इस प्रकारकी भूलें करते हैं। ब्रह्मचर्यके महत्त्वको भूल जाना ही इस भूलका प्रधान कारण है, परंतु यह भूल सर्वथा अक्षम्य होती है, प्रकृति हाथोंहाथ फल दे देती है। अतएव माता-पिता और अभिभावकोंको चाहिये कि वे अपनी संतानका विवाह वयसे पूर्व कदापि न करें। वर्तमान परिस्थितिको देखते हुए विवाहके योग्य वर-कन्याकी आयु अन्ततः पूर्ण अठारह और बारह वर्ष नियत की जा सकती है। मर्यादामें रहते हुए आवश्यकता और योग्यतानुसार इसकी अवधि और भी बढ़ायी जाय तो उत्तम है। धर्मशास्त्रोंके अनुसार कन्याका विवाह रजोदर्शनसे पूर्व ही होना चाहिये। यद्यपि मनु महाराजने योग्य वरके अभावमें रजोदर्शनके बाद तीन वर्षतक और भी प्रतीक्षा करनेकी आज्ञा दी है और यहाँतक कहा है कि कन्या आजन्म कुँआरी रह जाय तो कोई आपत्ति नहीं, परन्तु अयोग्य वरके साथ उसका विवाह न करना चाहिये; परन्तु यह व्यवस्था योग्य वरके अभावमें है। जो लोग अपनी कन्याका किसी लोभ या प्रमादवश कन्यासे छोटी उम्रके वरके साथ या वृद्धके साथ विवाह कर देते हैं वे बड़ा पाप करते हैं। धर्मशास्त्रका वाक्य है—

भावसे जगत्की सेवा कर और शास्त्रके मर्यादानुसार यथावश्यक सम व्यवहार कर देवर्षिपितृऋणसे मुक्त होते हैं। शास्त्र कहता है—

'पुत्रार्थे क्रियते भार्या'

'भार्या पुत्रोत्पादनके लिये करनी चाहिये न कि विलास वासनाके लिये। स्त्री सहधर्मिणी है, विलासकी सामग्री नहीं विवाह किया जाता है संयमके लिये, न कि उच्छृङ्खलताको आश्र देनेके लिये। आज हम इस परम सत्यको भूल गये हैं, इसीलि तो स्वर्गके नन्दनकाननके सदृश हमारा सुखमय गृहस्थ आज नरकपुरी बन रहा है। विवाहका दायित्व और उसका असली उद्देश्य हम भूल गये हैं। विवाहकी धार्मिकताको छोड़कर आज हमने उसे केवल इन्द्रिय-सुख-साधनका ही द्वार बना लिया है। शास्त्र कहता है कि चौबीस वर्षपर्यन्त गुरुगृहमें निवास करनेके उपरान्त जब युवक विद्याबलसम्पन्न होता है, जब वह अपनी जीविका स्वयं निर्वाह करने योग्य होता है, तब उसे गृहस्थाश्रमके पवित्र द्वारमें प्रवेश करनेका अधिकार प्राप्त होता है। आज हम इस महत्त्वपूर्ण व्यवस्थाको भुलाकर अबोध बालक-बालिकाओंका गुड्डे-गुड्डियोंका-सा विवाह कर उनके भावी जीवनको नष्ट कर डालते हैं। जिन बच्चोंको धोती पहननेका शऊर नहीं उन्हें हम गृहस्थाश्रमके कठिन बन्धनमें बाँधते हैं। वे बेचारे अबोध बालक इसका मर्म क्या जानें। उन्हें क्या पता कि विवाहमें पति-पत्नी आपसमें क्या प्रतिज्ञा करते हैं? बालक केवल विवाहको एक आमोद मानकर खुशीमें फूले फिरते हैं, परंतु जो बुद्धिमान् लोग ऐसे विवाहोंका परिणाम जानते हैं, उन्हें अबोध बालकोंके इस आमोद-प्रमोदपूर्ण विनोदपर रुलाई आती है। हमारे

बालकोंकी अवस्था तो देखिये ! जवानी आनेके पहले ही बुढ़ापा आ जाता है। यही स्थिति स्त्रियोंकी है, शायद ही कोई ऐसी युवती हो जो प्रदर या रजोविकारके रोगसे पीड़िता न हो ! युवक और युवतियोंकी मृत्यु-संख्या देखकर तो कलेजा काँपता है ! कलियाँ खिलनेके पहले ही मुर्झा जाती हैं। इससे अधिक गृहस्थकी दुर्दशा और क्या होगी ? इसमें कोई सन्देह नहीं कि माता-पिताको अपने बालक बड़े प्यारे होते हैं, वे जान-बूझकर उनका अनिष्ट नहीं करते परंतु उनकी बुद्धिमें अज्ञान छाया हुआ है, इसीलिये वे इस प्रकारकी भूलें करते हैं। ब्रह्मचर्यके महत्त्वको भूल जाना ही इस भूलका प्रधान कारण है, परंतु यह भूल सर्वथा अक्षम्य होती है, प्रकृति हाथोंहाथ फल दे देती है। अतएव माता-पिता और अभिभावकोंको चाहिये कि वे अपनी संतानका विवाह वयसे पूर्व कदापि न करें। वर्तमान परिस्थितिको देखते हुए विवाहके योग्य वर-कन्याकी आयु अन्ततः पूर्ण अठारह और बारह वर्ष नियत की जा सकती है। मर्यादामें रहते हुए आवश्यकता और योग्यतानुसार इसकी अवधि और भी बढ़ायी जाय तो उत्तम है। धर्मशास्त्रोंके अनुसार कन्याका विवाह रजोदर्शनसे पूर्व ही होना चाहिये। यद्यपि मनु महाराजने योग्य वरके अभावमें रजोदर्शनके बाद तीन वर्षतक और भी प्रतीक्षा करनेकी आज्ञा दी है और यहाँतक कहा है कि कन्या आजन्म कुँवारी रह जाय तो कोई आपत्ति नहीं, परन्तु अयोग्य वरके साथ उसका विवाह न करना चाहिये; परन्तु यह व्यवस्था योग्य वरके अभावमें है। जो लोग अपनी कन्याका किसी लोभ या प्रमादवश कन्यासे छोटी उम्रके वरके साथ या वृद्धके साथ विवाह कर देते हैं वे बड़ा पाप करते हैं। धर्मशास्त्रका वाक्य है—

भावसे जगत्की सेवा कर और शास्त्रके मर्यादानुसार यथावश्यक समस्त व्यवहार कर देवर्षिपितृऋणसे मुक्त होते हैं। शास्त्र कहता है—

'पुत्रार्थे क्रियते भार्या'

'भार्या पुत्रोत्पादनके लिये करनी चाहिये न कि विलास-वासनाके लिये। स्त्री सहधर्मिणी है, विलासकी सामग्री नहीं। विवाह किया जाता है संयमके लिये, न कि उच्छृङ्खलताको आश्रय देनेके लिये। आज हम इस परम सत्यको भूल गये हैं, इसीलिये तो स्वर्गके नन्दनकाननके सदृश हमारा सुखमय गृहस्थ आज नरकपुरी बन रहा है। विवाहका दायित्व और उसका असली उद्देश्य हम भूल गये हैं। विवाहकी धार्मिकताको छोड़कर आज हमने उसे केवल इन्द्रिय-सुख-साधनका ही द्वार बना लिया है। शास्त्र कहता है कि चौबीस वर्षपर्यन्त गुरुगृहमें निवास करनेके उपरान्त जब युवक विद्याबलसम्पन्न होता है, जब वह अपनी जीविका स्वयं निर्वाह करने योग्य होता है, तब उसे गृहस्थाश्रमके पवित्र द्वारमें प्रवेश करनेका अधिकार प्राप्त होता है। आज हम इस महत्त्वपूर्ण व्यवस्थाको भुलाकर अबोध बालक-बालिकाओंका गुड्डे-गुड्डियोंका-सा विवाह कर उनके भावी जीवनको नष्ट कर डालते हैं। जिन बच्चोंको धोती पहननेका शऊर नहीं उन्हें हम गृहस्थाश्रमके कठिन बन्धनमें बाँधते हैं। वे बेचारे अबोध बालक इसका मर्म क्या जानें। उन्हें क्या पता कि विवाहमें पति-पत्नी आपसमें क्या प्रतिज्ञा करते हैं? बालक केवल विवाहको एक आमोद मानकर खुशीमें फूले फिरते हैं, परंतु जो बुद्धिमान् लोग ऐसे विवाहोंका परिणाम जानते हैं, उन्हें अबोध बालकोंके इस आमोद-प्रमोदपूर्ण विनोदपर रुलाई आती है। हमारे

वकोंकी अवस्था तो देखिये ! जवानी आनेके पहले ही बुढ़ापा आ या है। यही स्थिति स्त्रियोंकी है, शायद ही कोई ऐसी युवती हो तो प्रदर या रजोविकारके रोगसे पीड़िता न हो ! युवक और युवतियों-की मृत्यु-संख्या देखकर तो कलेजा काँपता है ! कलियाँ खिलनेके पहले ही मुर्झा जाती हैं। इससे अधिक गृहस्थकी दुर्दशा और क्या होगी ? इसमें कोई सन्देह नहीं कि माता-पिताको अपने बालक बड़े प्यारे होते हैं, वे जान-बूझकर उनका अनिष्ट नहीं करते परंतु उनकी बुद्धिमें अज्ञान छाया हुआ है, इसीलिये वे इस प्रकारकी भूलें करते हैं। ब्रह्मचर्यके महत्त्वको भूल जाना ही इस भूलका प्रधान कारण है, परंतु यह भूल सर्वथा अक्षम्य होती है, प्रकृति हाथोंहाथ फल दे देती है। अतएव माता-पिता और अभिभावकोंको चाहिये कि वे अपनी संतानका विवाह वयसे पूर्व कदापि न करें। वर्तमान परिस्थितिको देखते हुए विवाहके योग्य वर-कन्याकी आयु अन्ततः पूर्ण अठारह और बारह वर्ष नियत की जा सकती है। मर्यादामें रहते हुए आवश्यकता और योग्यतानुसार इसकी अवधि और भी बढ़ायी जाय तो उत्तम है। धर्मशास्त्रोंके अनुसार कन्याका विवाह रजोदर्शनसे पूर्व ही होना चाहिये। यद्यपि मनु महाराजने योग्य वरके अभावमें रजोदर्शनके बाद तीन वर्षतक और भी प्रतीक्षा करनेकी आज्ञा दी है और यहाँतक कहा है कि कन्या आजन्म कुँवारी रह जाय तो कोई आपत्ति नहीं, परन्तु अयोग्य वरके साथ उसका विवाह न करना चाहिये; परन्तु यह व्यवस्था योग्य वरके अभावमें है। जो लोग अपनी कन्याका किसी लोभ या प्रमादवश कन्यासे छोटी उम्रके वरके साथ या वृद्धके साथ विवाह कर देते हैं वे बड़ा पाप करते हैं। धर्मशास्त्रका वाक्य है—

आत्मसमर्पण करो, हमारा विवाहबन्धन सुदृढ़ हो, हम दोनोंको रेत:संयम करना पड़ेगा, फिर यथासमय देहसंयोगसे सुपुत्र उत्पादन करेंगे, उसका सुख देखेंगे। इस प्रकारकी विधिसे पुत्र त्पादन करनेपर वे दीर्घजीवी होंगे। तुम्हारी और मेरी एकात्मता । जानेपर हम दोनोंके तेजकी वृद्धि होगी, दोनोंका हृदय ल्कर समुन्नत होगा, सौ वर्ष जीवेंगे, सौ वर्ष देखेंगे और । वर्ष सुनेंगे।'

इससे पता लगता है कि उस समय सौ वर्षकी आयु होती ; पर होती थी इस शर्तसे कि 'हम दोनोंको रेत:संयम करना ःगा।' रेत:संयम न होनेसे न तो सौ वर्षकी आयु होती है र न बलिष्ठ मेधावी सन्तान ही होती है। आज रेत:संयमके भावसे हमारी और सन्तानोंकी क्या दशा है? देह ल हड्डियोंका ढाँचा रह गया है और मन धर्माधर्मके विवेकसे य है, इसका कारण यही है कि आज हम 'सन्तानार्थं च न्निम्' इस शास्त्रोक्तिकी बुरी तरहसे अवहेलना कर रहे हैं। र्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं—

ऋतावृतौ स्वदारेषु सङ्गतिर्या विधानतः।
ब्रह्मचर्यं तदेवोक्तं गृहस्थाश्रमवासिनाम्॥

'ऋतुकालमें अपनी धर्मपत्नीसे शास्त्रके आदेशानुसार ल सन्तानार्थ समागम करनेवाला पुरुष गृहस्थमें रहता ा भी ब्रह्मचारी है।' स्मरण रखना चाहिये, केवल ऋतुकालमें स्त्रीके साथ सहवास करनेका विधान है, चाहे जब अनर्गल से नहीं! ऋतुकाल किसे कहते हैं, रजोदर्शनका चौथा दिन

ो ऋतुकाल नहीं है। यदि उस दिन कोई ग्रहण, रामनवमी, कृष्णाष्टमी आदि पर्व हों तो उस दिन स्त्री-संसर्ग निषिद्ध है। भगवान् मनु कहते हैं कि ऋतुकालमें अपनी विवाहिता पत्नीसे सहवास करना चाहिये। परन्तु 'पर्ववर्जम्' पर्व हो तो उस दिन नहीं। ऋतुकालके सम्बन्धमें मनु महाराज कहते हैं—

ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडशस्मृताः।
चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्भिर्गर्हितैः॥
तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः॥

(३ । ४६-४७)

'सत्पुरुषोंद्वारा निन्दित रजोदर्शनके पहले चार दिनोंसहित सोलह रात्रियाँ स्त्रियोंका स्वाभाविक ऋतुकाल कहलाता है। इन सोलहमेंसे पहली चार रात्रियाँ तथा ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि स्त्री-सहवासके लिये निन्दित है। बाकी दस रात्रियाँ उत्तम समझी जाती हैं।'

इन दस रात्रियोंमेंसे प्रतिपदा, षष्ठी, अष्टमी, एकादशी, द्वादशी, चतुर्दशी और पूर्णिमादि तिथियाँ तथा व्यतिपात, ग्रहण, रामनवमी, शिवरात्रि, जन्माष्टमी, श्राद्धदिवस, संक्रान्ति और रविवार आदि दिनोंको बाद देकर जो तिथियाँ उन दस तिथियोंमेंसे बचें उनमें संतानके हेतुसे या स्त्रीकी इच्छासे महीनेभरमें केवल दो बार जो स्त्री-संगम करता है वह गृहस्थमें रहता हुआ भी ब्रह्मचारी माना गया है। मनु महाराज कहते हैं—

निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन्।
ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्॥

(३ । ५०)

'पहली निन्दित छः रात्रियाँ तथा दूसरी और अ
कुल चौदह रात्रियोंको छोड़कर जो पुरुष (महीनेमें
दो रात्रि स्त्रीके प्रति गमन करता है तो वह ब्रह्मचारी
जाता है ।'

रजस्वलाके साथ कभी संसर्ग न करे, इस
प्रकारकी बीमारियाँ होती हैं । इसके सिवा आश्ले
मूल, कृत्तिका, ज्येष्ठा, रेवती, उत्तराभाद्रपद, उत्त
और उत्तराषाढ़ा नक्षत्रोंमें भी स्त्री-सहवास निषिद्ध है
रास्तेमें, श्मशानमें, औषधालयमें, ब्राह्मणके घरमें, गु
सबेरे, सन्ध्याको, अपवित्र अवस्थामें, दवा लेनेके बाद
भूखे, खानेके बाद तुरंत, मित्र और गुरुजनोंके
मल-मूत्र-त्यागकी हाजतमें, दुखी मनसे, आवेगमें
व्यायाम करके थकावटमें, उपवासके दिन और दूर
सामने कभी स्त्री-सहवास नहीं करना चाहिये । स्त्री
सम्बन्धमें ग्रीसके महात्मा साक्रेटीजसे उनके एक शि
[illegible] बातें हुई थीं—

शिष्यने पूछा—मनुष्यको स्त्री-प्रसङ्ग कितनी बार करन

साक्रेटीज—जीवनमें केवल एक बार ।

शिष्य—यदि इससे तृप्ति न हो तो ?

साक्रेटीज—तो वर्षमें एक बार कर सकता है ।

शिष्य—इतनेसे भी मन न माने तो ?

साक्रेटीज—महीनेमें एक बार करे ।

शिष्य—फिर भी न रहा जाय तो ?

साक्रेटीज—खैर, महीनेमें दो बार करे, परन्तु ऐसा करनेवालेकी मृत्यु जल्दी होगी ।

शिष्य—यदि इतनेपर भी इच्छा बनी रहे तो ?

साक्रेटीज—पहले कफन मँगाकर घरमें रख ले; फिर चाहे जैसे किया करे !

उपर्युक्त प्रमाणोंसे यह सिद्ध हो गया कि स्त्री-सहवास जितना कम किया जाय उतना ही श्रेष्ठ है और उतना ही मनुष्यकी पारमार्थिक उन्नतिके लिये उपयोगी है ।

जो स्त्री-पुरुष अपनी इच्छासे सर्वथा ब्रह्मचारी होकर रहना चाहें उन्हें अवश्य ऐसा करना चाहिये । कुछ लोग कृत्रिम और अनैसर्गिक साधनोंसे सन्तानोत्पादन बंद करना चाहते हैं, ऐसा करना पाप है । अधिक संतान न उत्पन्न करनेका सबसे सुन्दर और धर्मयुक्त उपाय दम्पतीका स्वेच्छासे ब्रह्मचर्यका नियम लेना है । इससे लोक-परलोक दोनों सुधर सकते हैं ।

अब संक्षेपमें सूत्ररूपसे ब्रह्मचर्यरक्षाके कुछ सामाजिक और व्यक्तिगत नियम बतलाये जाते हैं, जिनका मनन करना चाहिये और यथासाध्य उन्हें काममें लानेकी चेष्टा भी करनी चाहिये ।

ब्रह्मचर्यरक्षाके उपाय

(१) बालविवाहका सर्वथा त्याग । कम-से-कम अठारह वर्षसे पहले लड़केका और बारह वर्षसे पहले लड़कीका विवाह भूलकर भी नहीं करना चाहिये ।

(२) वृद्धविवाह कभी न होने देना चाहिये ।

(३) ब्रह्मचर्याश्रमोंकी स्थापना करनी चाहिये । जिनमें बालकोंके

ब्रह्मचर्यकी रक्षाका बड़ा कड़ा प्रबन्ध होनेके साथ ही र
धर्ममूलक ब्रह्मचर्यकी शिक्षा भी दी जाय। कम-से-कम अठा
सालकी उम्रतक बालकोंका उसमें रहना अनिवार्य हो।

(४) लड़के-लड़कियोंकी सगाई बहुत पहले न की जाय।

(५) बालक-बालिकाओंको भड़कीले कपड़े और गहने बिल्कु
ही न पहनाये जायँ।

(६) शृङ्गार-रसके संस्कृत या हिन्दीके काव्य या नाटक-उपन्यासादि ग्रन्थोंका प्रचार यथासाध्य रोका जाय, कम-से-कम छोटी उम्रके बालक-बालिकाओंके हाथमें ऐसी पुस्तकें कभी न दी जायँ और न विद्यार्थियोंको साहित्यकी दृष्टिसे ही ऐसे ग्रन्थ पढ़ाये जायँ।

(७) शृङ्गार-रसप्रधान नाटक-सिनेमा कभी न देखे जायँ, कम-से-कम बालक-बालिकाओंको कभी न दिखलाये जायँ।

(८) उत्तेजक पदार्थ न खाये जायँ। मिर्च, राई, गरम मसाले, अचार, खटाई, अधिक मीठा और अधिक गरम चीजें न खायी जायँ। भोजन खूब चबाके किया जाय। भोजन सदा सादा, ताजा और नियमित समयपर किया जाय। मांस-मद्यका सर्वथा परित्याग कर दे, किसी भी मादक (नशीली) वस्तुका सेवन न किया जाय।

(९) यथासाध्य नित्य खुली हवामें प्रतिदिन सवेरे और सन्ध्याको पैदल घूमा जाय।

(१०) रातको जल्दी सोया जाय और प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें या सूर्योदयसे कम-से-कम एक घंटे पहले अवश्य उठा जाय।

सोते समय पेशाब करके सोवें। स्त्री और पुरुष एक पलंग-पर या एक साथ कभी न सोवें। रातको भगवान्‌का चिन्तन करते हुए नींद लें और सवेरे जागते ही फिर भगवान्‌का चिन्तन करें।

(११) कुसंगति सर्वथा त्याग दी जाय। स्त्री-सम्बन्धी चर्चा कभी न की जाय। इसी प्रकार स्त्री भी पुरुष-चिन्तनका त्याग करे।

(१२) दम्पती (विवाहित स्त्री-पुरुष) को छोड़कर अकेलेमें दूसरे-दूसरे स्त्री-पुरुष कभी न बैठें और न एकान्तमें बातचीत करें।

(१३) स्त्रियोंकी ओर कभी न देखे, यदि दृष्टि जाय तो तुरंत मातृभाव कर ले या परमात्मभाव कर ले। इसी प्रकार स्त्रियाँ भी पुरुषोंकी ओर न देखें, यदि दृष्टि जाय तो पिताभाव या परमात्मभाव कर लें।

(१४) नित्य सत्सङ्ग किया जाय। सद्ग्रन्थोंका अध्ययन किया जाय। रामायण, महाभारत, उपनिषदादि ग्रन्थोंके सुन्दर-सुन्दर भागोंका नित्य स्वाध्याय हो। श्रीमद्भगवद्गीताका नित्य अर्थसहित पाठ किया जाय।

(१५) शौकीनी सर्वथा त्याग दी जाय। यह स्मरण रखना चाहिये कि सजावट और शृङ्गारसे कामवासना जाग्रत् होती है। शृङ्गार वास्तवमें किया ही जाता है इसलिये कि मैं दूसरोंको सुन्दर दिखलायी दूँ। शृङ्गार करनेवाला स्वयं डूबता है और दूसरोंको डुबोता है।

(१६) इत्र-फुलेल कभी न लगाया जाय, फैशनसे न रहे, चटक-मटक छोड़ दी जाय, बाल न रक्खे जायँ, बार-बार